* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १४ { गौराब्द ४८२, मास—पद्मनाभ ११, वार—प्रद्युम्न
मंगलवार, ३२ भाद्र, सम्वत् २०२५, १७ सितम्बर १९६८ } संख्या ३-४

श्रीराधिकाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम्

[श्रीश्रील-रघुनाथदास गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीगान्धर्वायै नमः

अवीक्ष्यात्मेश्वरीं काचिद्वृन्दावन महेश्वरीम् ।
तत्पदाम्भोजमात्रैकगतिदस्थितिकातरा ॥१॥
पतिता तत् सरस्तवीरे रुदत्यार्त्तरवाकुलम् ।
तच्छ्रीवक्त्रेक्षणावाप्त्यै नामान्येतानि संजगौ ॥२॥

किसी एक दासीने अपनी स्वामिनी वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिका का कहीं भी दर्शन न पाकर श्रीराधाकुण्डके तटपर पतित होकर उन श्रीराधाके चरणारविन्दोंका ही एकमात्र आश्रय करके अत्यन्त कातर होकर श्रीराधिकाके मुखारविन्दके दर्शनार्थ अत्यन्त आकुल चित्तसे रोदन करती हुई आगे लिखे हुए नामोंका कीर्तन किया था ॥१-२॥

राधा गान्धर्विका गोष्ठयुवराजैककामिता ।
गान्धर्वा राधिका चन्द्रकान्तिर्माधवसंगिनी ॥४॥

१. राधा, २. गान्धर्विका, ३. गोष्ठयुवराजैककामिता, ४. गान्धर्वाराधिका, ५. चन्द्रकान्ति, ६. माधवसंगिनी ॥३॥

दामोदराद्वैतसखी कार्तिकोत्कीर्त्तिदेश्वरी ।
मुकुन्ददयिता - वृन्दधम्मिल्लमणिमञ्जरी ॥४॥

७. दामोदराद्वैतसखी, ८. कार्त्तिकोत्कीर्त्तिदेश्वरी, ९. मुकुन्ददयितावृन्दधम्मिल्ल-मणिमञ्जरी अर्थात् जो मुकुन्दकी प्रियतमावृन्दके एकत्र संबद्ध जूड़ाके शिखरपर सुशोभित मणि-मंजरी स्वरूपा हैं ॥४॥

भास्करोपासिका वार्षभानवी वृषभानुजा ।
अनंगमञ्जरी-ज्येष्ठा श्रीदामावरजोत्तमा ॥५॥

१०. भास्करोपासिका, ११. वार्षभानवी, १२. वृषभानुजा, १३. अनङ्गमञ्जरी-ज्येष्ठा, १४. श्रीदामावरजा, १५. उत्तमा ॥५॥

कीर्तिदाकन्यका मातृस्नेहपीयूषपुत्रिका ।
विशाखासवयाः प्रेष्ठविशाखा - जीविताधिका ॥६॥

१६. कीर्त्तिदाकन्यका, १७. मातृस्नेहपीयूषपुत्रिका, १८. विशाखासवया, १९. प्रेष्ठविशाखाजीविताधिका ॥६॥

प्राणाद्वितीयललिता वृन्दावनविहारिणी ।
ललिताप्राणलक्षैकरक्षा वृन्दावनेश्वरी ॥७॥

२०. प्राणाद्वितीयललिता अर्थात् ललिता सखी जिनकी अद्वितीय प्राणस्वरूपा हैं, २१. वृंदावनविहारिणी, २२. ललिताप्राणलक्षैकरक्षा अर्थात् ललिताजी अपने लाखों प्राणोंके द्वारा जिनकी रक्षा करती हैं, २३. वृंदावनेश्वरी ॥७॥

व्रजेन्द्रगृहिणी कृष्णप्रायस्नेहनिकेतनम् ।
व्रजगोगोपगोपाली जीवमात्रैकजीवनम् ॥८॥

२४. यशोदाजीकी कृष्णके समान स्नेहपात्री, १५. व्रज, गो, गोप, गोपी और जीवमात्रकी जीवनस्वरूपा ॥८॥

स्नेहलाभीरराजेन्द्रावत्सलाच्युतपूर्वजा ।
गोविन्दप्रणयाधारसुरभीसेवनोत्सुका ॥९॥

२६. स्नेहलाभीरराजेन्द्रा अर्थात् आभीर-राजेन्द्र श्रीनन्दराज जिनके प्रति अत्यधिक स्नेह रखते हैं, २७. वत्सलाच्युतापूर्वजा अर्थात् श्रीकृष्णके पूर्वज श्रीबलदेवजीका जिनके प्रति वात्सल्य भाव है, २८. गोविन्दप्रणयाधारसुरभीसेवनोत्सुका अर्थात् श्रीकृष्णकी प्यारी गौओंकी सेवामें सर्वदा तत्परा ॥९॥

धृतनन्दीश्वरक्षेमगमनोत्कण्ठिमानसा ।
स्वदेहाद्वैतताद्दृष्टधनिष्ठाध्येयदर्शना ॥१०॥

२९. धृतनन्दीश्वरक्षेम-गमनोत्कण्ठिमानसा अर्थात् जिनका मन नन्दीश्वरको गमन करनेमें सर्वदा उत्कण्ठित रहता है, ३०. स्वदेहाद्वैतताद्दृष्टधनिष्ठाध्येयदर्शना अर्थात् अपने शरीरसे अभिन्न धनिष्ठा जिनका ध्यानमें सर्वदा दर्शन करती हैं ॥१०॥

गोपेन्द्रमहिषीपाकशालावेदिप्रकाशिका ।
आयुर्वर्द्धकराद्धान्ना रोहिणीघ्रातमस्तका ॥११॥

३१. यशोदा-पाकशाला-वेदि-प्रकाशिका, ३२. आयुर्वर्द्धकराद्धान्ना अर्थात् जिनके द्वारा पकाये हुए अन्नादि परमायुकी वृद्धि करनेवाले होते हैं, ३३. रोहिणीघ्रातमस्तका अर्थात् रोहिणीदेवी जिनका मस्तक सूँघती हैं ॥११॥

सुबलन्यस्तसारूप्या सुबलप्रीतितोषिता ।
मुखराहृक् सुधानप्त्री जटिलादृष्टिभीषिता ॥१२॥

३४. सुबलन्यस्तसारूप्या अर्थात् ठीक जिनके रूप जैसा ही सुबलका रूप है, ३५. मुखराहृक् सुधानप्त्री अर्थात् मुखराके नेत्रोंमें सुधाके समान लगनेवाली प्रिय नातिनी हैं, ३६. जटिलादृष्टिभीषिता अर्थात् जो जटिलाके दर्शनसे भयभीत हो जाती हैं ॥१२॥

(क्रमशः)

श्रीमद्भागवत

[ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद]

श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवानकी लीला-कथाओं का वर्णन है । उन कृष्ण-कथाओंका श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेसे हृदयमें कृष्णकी स्फूर्त्ति होती है। जीवोंके लिए यही यथार्थ कर्णवेध-संस्कार है। वर्तमान अवस्थामें जीवोंके चिन्मय कर्ण जड़ीय आवरणसे ढके हुए हैं। अतः बद्धजीव भगवानके अप्राकृत नाम, रूप, गुण और लीलाओंका श्रवण करनेमें असमर्थ होता है । महाभागवतके मुखसे श्रीमद्भागवतका श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेसे चिन्मय कर्णके ऊपरका जड़ीय आवरण दूर हो जाता है। तब भगवान्‌के अप्राकृत नाम, रूप, गुण और लीलाओंकी विशुद्ध सत्वोज्ज्वल जीव-हृदयमें स्फूर्त्ति होती है। उस समय जीव-हृदय ही वृन्दावन बन जाता है; अर्थात् वहीं भगवान कृष्णचन्द्र निवास करते हैं।

जो लोग बहुतसे विषयोंका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान रखते हैं, किन्तु किसी भी विषयमें विशेषरूपसे पारङ्गत नहीं होते, वे बहुतसे ग्रन्थोंका (भगवान की भक्तिका प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थोंके अलावा दूसरे दूसरे ग्रन्थोंका) कलाभ्यास करते हैं। परिणाम यह होता है कि वे धर्मतत्त्वको यथार्थ रूपमें हृदयङ्गम नहीं कर पाते और श्रीमद्भागवतको भी बहुतसे शास्त्र ग्रन्थोंमें से एक साधारण शास्त्र-ग्रन्थमात्र समझते हैं । ऐसे व्यक्ति श्रीमद्भागवतका तात्पर्य और भगवानकी लीलाओंके रहस्यको समझनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। वे लोग जन्म-जन्मान्तर की वासनाओंके कारण भागवतके तात्पर्यको समझनेमें असमर्थ हैं । वे लोग भागवतका पाठ करके भी कृष्णेतर-वासनाके कारण भगवद् भक्तिसे सर्वथा वञ्चित रहते हैं।

जो व्यक्ति भागवतके यथार्थ तात्पर्यमें प्रवेश न कर केवल अपने जड़ीय विचारोंद्वारा भागवतमें वर्णित विषयोंकी आलोचना करते हैं, वे भगवान्‌की लीला-कथाओंमें प्रवेश करनेमें सर्वथा असमर्थ होते हैं।

समस्त वेदशास्त्रोंमें ही श्रीमद्भागवतको 'प्रेम' रूप प्रयोजनका आधार बतलाया गया है। साधारणतः भोगी व्यक्ति धर्मार्थकामको ही परम प्रयोजन समझते हैं और त्यागी-व्यक्ति मोक्षको ही परम पुरुषार्थ और प्रयोजन समझते हैं। किन्तु इन दोनोंसे अतीत सुनिर्मल आत्मज्ञानयुक्त भक्त लोग भगवद्भजनमें पारदर्शिता प्राप्त कर वेदोंमें वर्णित धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि चतुर्वर्गका परित्याग कर एकमात्र श्रीमद्भागवतमें वर्णित कृष्ण-प्रेमको ही परम पुरुषार्थके रूपमें ग्रहण करते हैं। यदि कर्म, ज्ञान, योग, स्वाध्याय आदि शुभ-कर्मोंका उद्देश्य यथार्थ-पुरुषार्थरूप भक्ति-संग्रह हो, तो ये सभी क्रियाएँ शुभ-कर्म न रहकर भक्तिके अङ्ग बन जाती हैं।

वेदशास्त्रकी उपमा दही से दी गई है। श्रीशुकदेव गोस्वामीने उस दहीका मन्थन किया। उस मन्थन-क्रियाद्वारा उत्पन्न नवनीत ही सर्ववेदसार-स्वरूप श्रीमद्भागवत हैं। श्रीपरीक्षित महाराजजीने विषयोंसे निवृत्त होकर समस्त वेदोंके तात्पर्य रूप भागवतको श्रीशुकदेवजीके उपदेशद्वारा प्राप्त किया।

मेरठ जिलेके निकट हस्तिनापुर है। वर्त्तमान मुजफ्फरनगर जिलेके अन्तर्गत भोपा थानाके भुखाड़हेड़ी ग्रामके निकटवर्ती शूकरतल गाँवमें गङ्गाजीके किनारे श्रीपरीक्षित महाराजजीने प्रायोपवेशन किया था। उसी स्थानमें सप्ताह-काल तक श्रीशुकदेवजीके श्रीमुखसे उन्होंने श्रीमद्भागवतका श्रवण किया था। जिस प्रकार दहीका मन्थन करनेसे सारांशरूपमें मक्खन पाया जाता है, उसी प्रकार वेदोंके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डरूप असार अंश की अकिञ्चित्करता (हेयता या तुच्छता) दिखलाकर प्रेम-भक्तिका सारत्व दिखलाया गया है। परीक्षित महाराजने अन्यान्य चर्चाओंका परित्यागकर उसी सारको ग्रहण किया था; अतएव सभी भागवत लोग ही 'सारग्राही' हैं। विद्ध भक्त लोग असत्-सङ्गमें पड़कर फल-भोगवादी या फल त्यागवादी हो पड़ते हैं। इस प्रकार वे भारग्राही होकर आत्मग्लानिको प्राप्त होते हैं। असारमिश्रित थोड़ेसे सारकी अपेक्षा असार-रहित विशुद्ध सार या निर्यास ही ग्रहणीय है, जो आत्मविद् व्यक्तियोंका एकमात्र भोज्य और पेय है। असारग्राही व्यक्ति फलभोगवाद द्वारा स्थूलरूपसे भारवाही और फलत्यागवादद्वारा बाहरसे 'भारहीन' होनेका अभिनय करते हैं। किन्तु फिर भी वे सूक्ष्मरूपसे अधिकतर गुरु-भारवाही हैं। दोनों ही श्रेणीके व्यक्ति सार-ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हैं।

जो लोग भगवान और भक्तोंमें भेद-बुद्धि कर विष्णु-वैष्णव तत्त्वको जान नहीं पाते, वे सब प्रकार से अपना अमंगल आप ही करते हैं। भगवत् लीलाओंमें प्रवेश न होनेसे भगवान सम्बन्धी सभी बात सम्यक् प्रकारसे कही नहीं जा सकतीं। भगवत् कथामय श्रीमद्भागवतको एकमात्र शुकदेव ही जानते हैं, दूसरे नहीं जानते। एक किंवदन्ती प्रचलित है कि एकबार महादेवजीने कहा था—'मैं भागवत जानता हूँ, शुकदेवजी जानते हैं; लेखक श्रीव्यासदेवजीने गुरु-पदाश्रय कर विशुद्ध गुरुसेवाके अभावमें कुछ समय तक धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तियोंके उपकारके लिए शास्त्र-ग्रन्थादिका प्रणयन किया था। किन्तु सच्छास्त्रोंके एकमात्र तात्पर्यरूप श्रीमद्भागवतकी रचना करते समय धर्मार्थकाममोक्षादिको धिक्कारते हुए कृष्ण-लीलाका वर्णन किया था। उसमें भी श्रीवार्षभानवी देवी श्रीमती राधिकाके प्रसङ्गकी प्रधानता न देकर और साधारण लोगोंमें योग्यताके अभावके कारण उन्होंने वर्णन करनेमें जो सावधानी प्रकाश किया है, उसके द्वारा उन्होंने कुछ जाननेका एवं कुछ न जाननेका आभास दिया है। किन्तु नृसिंहदेवजीके उपासक त्रिदण्डिस्वामी श्रीधरजी भगवत्-कृपासे सेवोन्मुख होनेके कारण श्रीमद्भागवतके तात्पर्यको भली प्रकारसे जानकर गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णकी सेवाकी बात समझ सके हैं।' भक्त्यैकरक्षक 'श्रीधरस्वामी और उनके सहोदर भ्राता

लक्ष्मीधरजीने नामभजनके प्रभावसे भगवानके रूप, गुण, परिकरवैशिष्ट्य और लीला आदिमें जो अधिकार प्राप्त किया था, उस कृपालाभसे श्रीधर-विरोधी श्रीधर-टीकाके पाठ करनेवाले बुभुक्षु (भोग चाहनेवाले) और मुमुक्षु (मोक्ष चाहनेवाले) व्यक्ति अभक्त होनेके कारण नितान्त वञ्चित हैं। कनिष्ठाधिकारमें भगवत्-सम्बन्धी थोड़ा-सा आभास मिलने पर भी भक्तोंका असम्मान करनेसे कनिष्ठाधिकारगत भगवत् सेवासे भी वञ्चित होना पड़ता है। इसलिए परिकरवैशिष्ट्य और विषय-आश्रय विचारमें जिनकी भेदबुद्धि है, वे लोग प्रेमभक्तिको सब प्रकारसे प्रयोजनके रूपमें जाननेमें असमर्थ हैं। अतएव मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी वे लोग केवल आत्मघाती मात्र हैं।

ब्रह्मज्ञानी लोग ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप त्रिपुटीके विनाशको ही चरम-आराध्य समझते हैं। योगी लोग गर्भोदकशायी विष्णुके साथ संयुक्त होनेका प्रयास करते हुए कैवल्य-प्राप्तिके लिए यत्न करते हैं। किन्तु भगवद्भक्त लोग वैसे नहीं हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवानकी लीलाएँ, उनके परिकर-वैशिष्ट्य, उनके सभी सद्गुण, उनके रूप तथा नामादिका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। नित्य-मुक्त भगवद्भक्त और साधनसिद्ध भक्त लोग तथा भक्तिपरायण सेवक लोग भगवानकी नित्यकालीय सेवाको छोड़कर और किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं समझते। इसलिए नित्य-सेवकके सेवा-विचारको छोड़कर भागवतमें अन्य किसी प्रसङ्गका वर्णन नहीं है। जो लोग भागवतमें भगवानकी नित्य सेवाको छोड़कर दूसरी वस्तुओंको ढूँढ़ते हैं, उन्हें नितान्त अर्वाचीन जानना चाहिए। अभक्त लोग सेवा-धर्म रहित होनेके कारण अन्याभिलाष, कर्म-फल प्राप्ति, निर्भेद - ब्रह्मानुसन्धान आदिका सन्धान करने जाकर उद्देश्यभ्रष्ट हो पड़ते हैं, वे भागवतके मूल-उद्देश्यको समझनेमें असमर्थ हैं। श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीने भागवतकी अभक्तिपर व्याख्या सुनकर कहा था—जो भागवत पाठकोंके हृदयमें अभक्तिकी बात स्फूर्ति कराते हैं, उस वञ्चनायुक्त भागवतकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए उस भागवत ग्रन्थको भगवद्विग्रह न जानकर उसे पार्थिव पदार्थ-विशेष जानकर फाड़कर फेंक देना ही उचित है। जो लोग श्रीमद्भागवतको भोग्य वस्तु समझते हैं, उनका वैसा दर्शन क्रमशः माया-बद्ध जीवोंके काम-प्रवृत्तिको बढ़ानेवाला है। इसलिए विषयी व्यक्तियोंको योषित् (भोगबुद्धियुक्त) जानकर भागवत पाठसे दूर रखना ही भगवानका उद्देश्य है।

यह सर्वशास्त्र-प्रमाणित बात है कि जब तक जड़ीय भोग और त्याग-बुद्धि प्रबल रहें, तब तक श्रीमद्भागवतके विचारको कोई भी कदापि समझ नहीं सकता। इसलिए जब तक जड़ विद्या, जड़ तपस्या और जड़ वस्तुमें प्रतिष्ठाशा विद्यमान रहें, तब तक चिन्तासे अतीत राज्यमें अवस्थित भगवत्कथाको समझना किसीके लिए भी संभव नहीं है। जो व्यक्ति भागवतको जागतिक भोग्यवस्तुओंमें से अन्यतम समझकर यह सोचते हैं कि हमने भागवत पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, वे लोग भागवतका अंशमात्र भी समझ नहीं सकते। श्रीमद्भागवतमें

जिस भगवत्-वस्तुको प्रतिपादित किया गया है, उसे जड़ेन्द्रियों द्वारा कदापि ग्रहण किया नहीं जा सकता। जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत-कथा कीर्त्तनको साक्षात् भगवद्विग्रह जानते हैं, भागवतको प्राकृत ग्रन्थ-विशेष नहीं समझते और श्रीमद्भागवतके विचारद्वारा अपने जड़ीय-बुद्धिजात दोषोंको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं, वे यह समझ पाते हैं कि सर्वसारस्वरूप भगवद्भजन ही श्रीमद्भागवतका एकमात्र प्रयोजन है। कोई व्यक्ति अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न, सर्वगुणयुक्त ज्ञानवान पण्डित होकर भी श्रीमद्भागवतको समझनेमें भ्रान्त हो सकते हैं। ऐसे पण्डितोंकी गौरव-वृद्धि करनेवाले व्यक्ति न्याय-अन्याय विचारकर्त्ता या पुरस्कार-तिरस्कारदाता यमराजद्वारा दण्डित होते हैं। भक्तिरहित पण्डित लोग यदि अपनेको भागवतमें अधिकारी समझें, किन्तु भक्तिके मूल आश्रय-वस्तुकी निन्दा करें, तो यही जानना चाहिए कि उन्हें भागवतपर कदापि-अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है।

श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ भगवत्कथामय हैं; अतएव दूसरे दूसरे ग्रन्थोंसे सर्वप्रकारसे भिन्न हैं। ऋक् मन्त्रमें 'भग' नामक आलोकमय देवताकी बात कही गई है। हमारे लिए यह सोचने-समझनेकी बात है कि क्या 'भगवत्' शब्दसे आंशिक विक्रम-विशिष्ट भगदेवताको समझा जा सकता है? अर्यमा, विवस्वान्, सविता आदि देवताओंकी तरह भग-देवता भी एक देवता-विशेष हैं? क्या श्रीमद्भागवत में तत्सम्बन्धित भगवानकी कथाका वर्णन है? नहीं, इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें वैसे आंशिक प्रतीतिपूर्ण भजनीय वस्तुका श्रेष्ठतम वस्तुके रूपमें प्रतिपादन नहीं किया है।

पाठक लोग यह भी सोच सकते हैं कि भगवद्-वस्तु भी प्राकृत वस्तुकी तरह एक साधारण वस्तु-मात्र हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है; श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वयंरूप भगवद्वस्तु अप्राकृत, अतीन्द्रिय और अधोक्षज हैं। कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अपरा (प्राकृत) विद्याके अन्तर्भुक्त ऋक्, साम, यजु, अथर्वादि चार वेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आदि वेदोंके षडङ्ग भी पराविद्याके अन्तर्गत हैं। किन्तु वास्तव में ये भी क्षरज्ञानयुक्त या परिवर्त्तनशील हैं। इसके विपरीत भगवद्वस्तु कालक्षोभ्य क्षरज्ञानके अधीन नहीं हैं। जिस शास्त्रमें अक्षर और अच्युत वस्तुकी आलोचना की गई हो, वही शास्त्र परा विद्याके अन्तर्गत है। श्रीमद्भागवत उस परा विद्या शास्त्रों में शिरोमणि स्वरूप हैं।

आधुनिक तार्किक लोगोंका कथन है कि भारतीय ऋक्-वेद संहिता ही मानव-सभ्यताका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है; उस सर्वप्राचीन आदि ग्रन्थके परवर्ती कालमें जो सभी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, वे उसकी अपेक्षा नये या आधुनिक ग्रन्थ हैं। और किसी-किसी का कहना है कि यह पौराणिक शास्त्र-विशेषमात्र है और बौद्ध एवं जैन मतोंकी समा-लोचना इस ग्रन्थमें होनेके कारण यह ग्रन्थ बौद्ध और जैन मतके अभ्युदयकालके पश्चात् लिखा गया है। कोई-कोई ऐसा भी कह सकते हैं कि ताम्रपर्णी-कृतमाला-पयस्विनी नदीतीरवासी किसी लेखक ने

अपने स्वदेशकी महिमाका कीर्त्तन करनेके उद्देश्यसे श्रीमद्भागवतकी रचना की है; अतएव दूसरे-दूसरे पुराणोंकी प्राचीनता और लेखन-प्रणालीके उत्कर्ष-विचारसे यह ग्रन्थ अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण दूसरे पुराणोंकी अपेक्षा परवर्तीकालमें लिखा गया है। जो भी हो, अश्रौत-पन्थके व्यक्ति अपने असंख्य परस्पर विवादयुक्त मतसमूहों द्वारा श्रीमद्भागवत-को सुदूर प्राचीनकालमें रचित ग्रन्थोंसे आधुनिक या मध्ययुगमें रचित ग्रन्थ-विशेष प्रमाणित करने की चेष्टा कर सकते हैं; किन्तु इन धारणाओंके खण्डनकारी निम्नलिखित विचारोंकी आलोचना करने पर यथार्थ सत्य जाना जा सकता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित विषयकी प्रतिपादन-प्रणालीसे हम जान सकते हैं कि मानव-सभ्यता-कालके सर्वप्राचीन ग्रन्थके प्रतिपाद्य देवता लोग इन्द्रियग्राह्य द्वितीयाभिनिवेशके मूर्त्तिमान उदाहरण मात्र हैं। ऋक् वेदादि संहिताके प्रतिपाद्य-विषयमें अलौकिकताकी अधिक संभावना नहीं है। उसके परवर्ती सूत्र वर्त्तमान संस्कृत भाषामें लिखित हैं तथापि परवर्त्तीकालीन मध्ययुगीय संस्कृत भाषाकी रचना-प्रणाली पूर्व प्रणालीकी अपेक्षा नाना प्रकार से श्रेष्ठ है। दार्शनिक सूत्र-समूह श्रौत और गृह्य सूत्र-समूह, बौद्ध मतके सभी सूत्र-ग्रन्थ आदि प्रत्यक्ष विचारपूर्ण भगवदितर द्वितीयभिनिवेशके ही उज्ज्वल उदाहरण हैं; किन्तु उनमें अपरोक्ष, अधोक्षज या अप्राकृत विचार और अलौकिक ऐतिह्य (इतिहास) का अधिक वर्णन नहीं मिलता। श्रीमद्भागवतमें द्वितीयाभिनिवेशज युक्ति, तर्क और विचारादिका खण्डन किया गया है। श्रीमद्भाग-वतमें वर्णित सुप्राचीन एतिहासिक विषयोंकी आलोचना करने पर जाना जाता है कि उनमें इन्द्रियपरायणता-विरोधी और प्रत्यक्ष ज्ञानादिसे अतीत बातोंकी ही अत्यन्त प्राञ्जल भाषामें आलो-चना की गई है। यद्यपि संस्कृत भाषामें लिखे गये ग्रन्थोंकी भाषा संहिता-कालकी भाषासे भिन्न है, तथापि श्रीमद्भागवतमें वर्णित विषयका विचार करने पर विचार-युगके पूर्वमें भी किस प्रकार अलौकिक सत्यका अत्यन्त सहज सम्मान था, यह जाना जाता है। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें जिस कालका इतिहास वर्णित है, उसीका लेशमात्र वैदिक संहिता ग्रन्थमें संक्षिप्त रूपसे वर्णन है। पुराणोंके मूल ग्रन्थ जिस भाषामें लिखे गये हैं, उन वैदिक ग्रन्थोंमें से अधिकांश ही कालके प्रभावसे नष्ट हो गये हैं। वे सभी ग्रन्थ पुराण - रचना-कालके परवर्त्ती समयमें आदर न किये जानेके कारण भारतके प्राचीन इतिहासके मूल ग्रन्थ वर्त्तमान समयमें दुर्लभ-प्राप्य हो गये हैं। इसलिए पुराणोंमें प्रतिपादित विषय आधुनिक हैं, ऐसी बात नहीं है। पुराणोंमें लिखित विष्णु-सम्बन्धीय प्राचीन इति-हासमें जिन बातोंका उल्लेख है, वे नवन्यास या उपन्यास आदिकी तरह आधुनिक या काल्पनिक नहीं हैं। श्रीमद्महाभारत और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रन्थोंके प्रतिपादित विषय ऋक् संहितासे भी बहुत पहलेकी बातें हैं, इसलिए संहिता कालके परवर्त्ती कालमें लिखित पुराणादि वैदिककालसे पूर्व-की विषयोंसे परिपूर्ण हैं। सूत्र-ग्रन्थोंमें शाण्डिल्य

और भरद्वाजादि ऋषियोंद्वारा रचित सूत्र-ग्रन्थ प्राप्य हैं। भिक्षु-सूत्र, कर्मन्दी पाराशरीय सूत्र आदि व्यास-सूत्रसे बहुत पहले रचित हैं। भक्ति सूत्रसमूह-का प्रचलन वर्त्तमान सात्वत-पञ्चरात्र-रचनाकालसे ही विस्तृत रूपसे हुआ। जिस प्रकार गृह्य-सूत्रादि कर्मकाण्डीय स्मार्तों द्वारा विंशति धर्मशास्त्रोंके रूपमें ग्रहण किये गये हैं, उसी प्रकार सूत्र-ग्रन्थादि भी पञ्चरात्रादि सात्वत शास्त्रोंमें ग्रहण किये गये हैं। सात्वत सूत्रोंकी रचना प्रणाली राजस और तामस सूत्रोंकी रचना-प्रणालीसे बिलकुल भिन्न है। भाग-गत, वैष्णव, नैष्कर्म, वैखानस, पाञ्चरात्रिक आदि विचार-प्रणालियाँ पूर्ववैदिक युगमें प्रबल रूपसे प्रचलित थीं। उसके पश्चात् जड़ विचारपूर्ण तर्क-द्वारा भगवद्भक्तिके विचारमें बाधा आने पर भी पौराणिक रचना-प्रणालीमें पूर्व इतिहास पुनः प्रकाशित हुआ है। भागवत-पाठ करनेवाले व्यक्ति यदि बुद्धिमान और निरपेक्ष होकर निगम-कल्पतरु के ललित फल, रसमय भागवतकी सर्वश्रेष्ठता उप-लब्धि करने पर भी तार्किक विचारका ही अधिक आदर करें, तो वे निरस्तकुहक सहज सत्यकी उपलब्धि न कर सकेंगे। आनुगत्यरूप भक्तिधर्म ही श्रौतविचारकी सर्वश्रेष्ठताका प्रतिपादक है। उसके अभावमें कर्म और ज्ञान मार्ग दोनों ही वास्तविक सत्यकी प्राप्तिमें बाधास्वरूप मात्र हैं।

इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थको ही कलियुगपावना-वतारी स्वयं भगवान श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीने अमल प्रमाण-शिरोमणिके रूपमें स्वीकार किया है। अतएव प्रत्येक उपदेशक और विद्वान् व्यक्तिके लिए चित्-धर्मका आनुगत्य ग्रहण करना अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत-विरोधी व्यक्तियोंको हम उनसे अधिक बुद्धिमान कहकर आदर करनेमें असमर्थ हैं।

वेदोंमें वर्णित परंब्रह्म गोपियोंकी गोदमें

निगमतरोः प्रतिशाखं मृगितं यत्तत् परंब्रह्म।
मिलितमिदानीमंके गोकुलपंकेरुहाक्षीणाम्॥

एक भक्त कहते हैं—मैं जन्मभर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जिस परं ब्रह्मको वेदकी प्रत्येक शाखामें ढूँढ़ते-ढूँढते निराश हो गया, वही सकल वेद प्रतिपाद्य परंब्रह्म मुझे व्रजवासियोंकी कृपा से कमलनयनी गोपियोंकी गोदमें खेलता हुआ मिला।

(पद्यावली से)

प्रश्नोत्तर

(श्रीमद्भागवत)

१—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजीने मूल-भागवतका कैसा अर्थ किया है ?

"मूल-भागवत अर्थात् चतुःश्लोकी-भागवत का श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजीने इस प्रकारसे अर्थ किया है—

(क)[प्रथम श्लोकमें परब्रह्म स्वरूप भगवान, आत्मा और मायाका परस्पर सम्बन्ध-ज्ञान दिखलाया गया है।]

भगवान् नारायण ब्रह्मासे कह रहे हैं—सर्वप्रथम शुद्ध जीवसमूहके आश्रय, सर्वशक्तिमान, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप एकमात्र मैं ही वर्त्तमान था। सत्—सूक्ष्म सत्ता, असत्—स्थूल सत्ता और इन दोनोंसे श्रेष्ठ तत्त्वरूप बद्ध-जीवके निवासस्थानरूप यह मायिक जगत्—कुछ भी नहीं था। मुझसे तत्त्वतः अभिन्न किन्तु विलक्षणतायुक्त होनेके कारण भिन्न यह मायिक् जगत् मेरा शक्तिपरिणाम है। जगत् सत्य किन्तु नश्वर है। मायिक सत्ताके नष्ट हो जाने पर पूर्णस्वरूप मैं ही अवशिष्ट रहूँगा।

(ख) [द्वितीय श्लोकमें विकल्प (व्यतिरेक) विचारके द्वारा इस सम्बन्ध-ज्ञानको विज्ञानके रूपमें प्रकाशित किया गया है।]

नित्य सत्य वैकुण्ठतत्त्वरूप अर्थ या सत्तासे जो भिन्नरूपमें प्रकाश पाता है एवं आत्मतत्त्वमें जिसको स्थिति नहीं है, वही आत्ममाया (भगवानकी माया) है। उदाहरणके लिए कहा जा सकता है कि नित्य चन्द्रसे जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रका आभास भिन्न या विपरीत है। उसी प्रकार यह मायिक जगत् भी वैकुण्ठ-जगत् का प्रतिफलन होनेके कारण वैकुण्ठ जगतसे भिन्न या विपरीत है। व्यतिरेक उदाहरणके द्वारा यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अन्धकार या छाया नित्यवस्तुका अनुगत-तत्त्व है, किन्तु नित्य वस्तु नहीं है, उसी प्रकार मायिक जगत् वैकुण्ठसे अभिन्न-मूल होने पर भी वैकुण्ठमें स्थित नहीं है।

(ग) [तृतीय श्लोकमें तद्-रहस्य या प्रेम भक्तिकी बात बतलायी गई है।]

जिस प्रकार महदादि सूक्ष्म भूतसमूह पृथिवी आदि स्थूल भूतोंमें अनुप्रविष्ट होकर विद्यमान् हैं, किन्तु सूक्ष्म भूत रूपमें उनसे स्वतन्त्र हैं, उसी प्रकार सब कारणोंके मूल-कारणरूप मैं समस्त सत्ताओंके मूल-सत्य ब्रह्म-परमात्मारूपसे जगतमें अनुस्युत रहने पर भी सर्वदा पृथक्रूपसे अपनी पूर्ण भगवत्-सत्ता प्रकाश करते हुए प्रणत-जनोंका (भक्तोंका) एकमात्र प्रेमास्पद हूँ।

(घ) [चतुर्थ श्लोकमें तदङ्ग अर्थात् भक्तिका साधन बतलाया गया है।]

आत्मतत्त्व-जिज्ञासु व्यक्ति पहले बतलाये गये अन्वय - व्यतिरेक विचारद्वारा सर्वदेश-कालातीत, सर्वत्र और सर्वदा वर्त्तमान नित्य-सत्यका अनुशीलन करेंगे।"

—कृ. स. १ म संस्करण, बंगला सम्वत् १२८६

२—क्या श्रीमद्भागवत मनुष्य-रचित आधुनिक ग्रन्थ है ?

"श्रीमद्भागवत आधुनिक ग्रन्थ नहीं है, बल्कि वेदकी तरह नित्य और प्राचीन है। पूज्यपाद श्रीधरस्वामीजीने 'तारांकुरः सज्जनिः' शब्दके द्वारा भागवतका नित्यत्व दिखलाया है। श्रीमद्भागवतको समस्त निगमशास्त्र (वेदशास्त्र) रूप कल्पवृक्षका चरमफल बतलाया गया है। प्रणव (ओंकार) से गायत्री, गायत्रीसे अखिल वेद और सम्पूर्ण वेदसे ब्रह्मसूत्र और ब्रह्मसूत्रसे श्रीमद्भागवतका आविर्भाव हुआ है। परंब्रह्मके सभी अचिन्त्य सत्यसमूह जीव-समाधिमें प्रतिभात होकर सच्चिदानन्द सूर्यस्वरूप यह पारमहंसी संहिता अत्यन्त उज्ज्वलरूपसे आविर्भूत हुई है। जिनके नेत्र हैं, वे दर्शन करें; जिनके कर्ण हैं, वे श्रवण करें और जिनका मन है, वे श्रीमद्भागवतके सभी सत्योंका मनन करें। केवल पक्षपातरूप अन्धता द्वारा पीड़ित व्यक्ति ही श्रीमद्भागवतके माधुर्य-आस्वादनसे नितान्त वञ्चित हैं।"

—'उपक्रमणिका' कृ. स.

३—प्रकृत वेदान्तवाक्य और वेदान्तभाष्य किसे कहा जा सकता है ?

"श्रीमद्भागवत ही व्यासकृत वेदान्तसूत्रका भाष्य है। श्रीमद्भागवतमें जो भी सिद्धान्त हैं, वे सभी यथार्थ वेदान्तसिद्धान्त हैं। श्रीश्रीमन्महाप्रभुने स्वयं कहा है कि सूत्रकार यदि स्वयं भाष्यकी रचना करें, तभी सूत्रका यथार्थ अर्थ प्रकाशित हो सकता है। अतएव हमें श्रीमद्भागवतरूप भाष्यको ही 'वेदान्तवाक्य' के रूपमें ग्रहण करना चाहिये।"

—'वस्तु निर्देश', स. तो. २।६

४—श्रीमद्भागवत ही एकमात्र सार्वजनिक शास्त्र है—इसके सम्बन्धमें श्रील भक्तिविनोद-ठाकुरजीका क्या विचार है ?

"हम कह सकते हैं कि यदि दूसरे समस्त हिन्दु-शास्त्रीय ग्रन्थोंको समुद्रमें फेंक दिया जाय और एकमात्र श्रीमद्भागवतको ही रखा जाय, तो आर्य-पुरुषोंकी (साधारण जीवोंकी भी) कोई हानि नहीं होगी।"

—'समालोचना' स. तो. ८।१२

५—श्रीमद्भागवतको सभी व्यक्ति क्यों नहीं स्वीकार करते ?

"बड़े सौभाग्यसे ही जीवोंकी श्रीमद्भागवत के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अतएव जगतमें जितने भी धर्मग्रन्थ हैं, उन सबमें श्रीमद्भागवत चूड़ामणिस्वरूप हैं।"

—'श्रीमद्भागवताचार्य', स. तो ६।१२

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

[श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २६]

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि श्रीकृष्ण द्वारका, मथुरा और गोकुलमें अपने परिकरवर्गके साथ नित्य विहार करते हुए उन-उन स्थानोंमें नित्यकाल विद्यमान रहते हैं, तो ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे श्रीनारायण क्यों अवतीर्ण हुए ? नारायणका अवतरण यदि श्रीकृष्णमें प्रवेशपूर्वक हुआ था, तब ब्रह्मादि देवगण द्वारकामें नित्य विराजमान श्रीकृष्णको छोड़कर श्रीनारायणके निकट प्रार्थना करनेके लिए क्यों गये थे ? तथा श्रीकृष्ण जन्म-लीला दिखलाकर मथुरा और द्वारकाको छोड़कर वैकुण्ठमें क्यों गमन करते हैं ? इन प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण द्वारकामें नित्य विहार करते हैं। वे ब्रह्मा आदिके निकट अप्रकट रहते हैं। क्षीरोदशायी नारायण नामक विष्णु (श्रीकृष्णके अंश, कलाविशेष) ब्रह्मा आदिके सम्मुख प्रकट होकर उनका पालन आदि करते हैं। अतः ब्रह्माण्डाधिपति ब्रह्मादि देववृन्द ब्रह्माण्डके विषयमें जो कुछ निवेदन करना होता है, क्षीरोदशायी नारायणसे ही निवेदन करते हैं। इसी नियमके अनुसार श्रीकृष्णके आविर्भावसे पूर्व ब्रह्मादिने कंसके अत्याचारोंसे पीड़िता पृथ्वीका भार-हरण करनेके लिये क्षीरोदशायी विष्णुके पास ही निवेदन किया था। क्षीरोदशायी विष्णुने उनकी प्रार्थना सुनकर उन्हें यह बतलाया कि इस समय स्वयं-भगवान्‌के अवतरणका समय उपस्थित है। इसलिए वे श्रीकृष्णके अन्दर प्रविष्ट होकर अवतीर्ण होंगे। प्रकटलीलाके अन्तमें वे विष्णु ही वैकुण्ठधाममें आरोहण करते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण तब भी द्वारका आदि धामोंमें निगूढ़ भावसे (अप्रकटरूपमें) लीला करते रहते हैं। इस विषयमें पहले ही कहा गया है--'नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः' —भगवान् मधुसूदन द्वारकामें नित्य निवास करते हैं। (भा. ११।३१।२४)

प्राचीनगणोंका कहना है—सूर्य प्रतिदिन प्रातःकालमें समुद्रसे उदित होते हैं तथा सायंकालमें उसीमें प्रवेश कर जाते हैं। किन्तु समुद्रके तीर पर रहनेवाले व्यक्ति ही ऐसा देखते हैं। परन्तु यह वास्तविक घटना नहीं है। यदि सूर्यद्वारा सुमेरु-परिक्रमा सम्बन्धी शास्त्रके प्रामाणिक वचनोंकी संगति रखनेके लिये उन कथनोंका अन्य प्रकारसे अर्थ ग्रहण किया जा सकता है, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठारोहण-प्रसंगका भी अन्य प्रकारसे अर्थ किया जा सकता है। जब कि बहुतसे शास्त्र-वचन द्वारका आदि धामोंमें श्रीकृष्णके नित्य-विहारका प्रतिपादन करते हैं,

तब उनके वैकुण्ठारोहण सम्बन्धी वचनोंका अन्य प्रकारसे अर्थ करना ही उचित है। उन वचनोंका इस प्रकारसे अर्थ करना होगा कि कृष्ण अपने विष्णुरूप अंशसे वैकुण्ठमें पधारे और श्रीकृष्ण नित्यकाल—सदा-सर्वदा द्वारका-मथुरामें लीला करते हैं।

प्रकट और अप्रकट भेदसे कृष्णकी लीलाएँ दो प्रकारकी हैं। मायाबद्ध जीवोंके समक्ष जो लीला अप्रकाशित होती है—जिसे मायाबद्ध जीव प्रत्यक्षरूपमें देख नहीं पाते, उसे अप्रकट-लीला कहते हैं। और उनके सामने जो लीला प्रकाशित होती है, उसे प्रकट-लीला कहते हैं। अप्रकट लीला आदि-मध्य-अन्तरूप परिच्छेद-रहित होती है; यह सदा-सर्वदा अनन्तकाल चलती रहती है। इस लीलामें भी श्रीकृष्ण यादवेन्द्रके रूपमें या व्रजेन्द्रनन्दनके रूपमें महासभामें उपवेशन आदि या गोचारण आदि लीलाविनोद प्रकाश किया करते हैं। प्रकट लीलामें श्रीकृष्ण-विग्रहमें बाल्य, पौगण्ड और कैशोर आदि अवस्थाओंके रूपमें क्रम-विकाश होता है तथा भगवदिच्छा शक्तिके द्वारा आदि-मध्य-अवसान हुआ करता है। कालकी कोई शक्ति भगवल्लीलाओंका स्पर्श नहीं कर सकती।

अप्रकट लीला दो प्रकारकी होती है — मन्त्रोपासनामयी और स्वारसिकी। मन्त्रोपासनामयी-लीलाकी उपासनानुयायी एक ही स्थानमें नित्यस्थिति होती है। स्वारसिकी-लीला बहुस्थान-व्यापिनी, नाना प्रकाशमयी और आदि मध्य-अन्तहीना होती है। वृन्दावनके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकाशोंमें विभिन्न प्रकारकी मन्त्रोपासनामयी लीलाएँ विद्यमान हैं। स्वारसिकी लीला उन सारी मन्त्रोपासनामयी लीलाओंको स्वान्तर्भूत रखकर विविध विचित्रताओंके साथ अनन्त काल तक अबाधगतिसे चलती रहती है। मन्त्रोपासनामयी लीलामें श्रीराधागोविन्द यमुनाके तटवर्ती कुञ्जमें बैठे हैं और स्वारसिकी लीलामें अभिसारके पश्चात् युगलका मिलन, कुञ्ज-प्रवेश, वहाँ विविध-विलास और तदनन्तर उपवनमें भ्रमण आदि विविध-विचित्रताएँ हैं।

श्रीउद्धव व्रजराज-दम्पतिको कह रहे हैं—

मा खिद्यत महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि॥

(भा. १०।४६।३६)

हे महाभाग द्वय! आपलोग खेद न करें। कृष्णको समीप ही दर्शन करेंगे। वे लकड़ीमें आगकी भाँति प्राणियोंके अन्तःकरणमें वर्तमान हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्हृदयमें उनके निवासका अभ्रान्त दृष्टान्त यह है कि—प्राणियोंके हृदयमें परमात्मलक्षण ज्योतिसदृश, और काष्ठमें अग्निलक्षण ज्योतिसदृश वे सदैव विद्यमान हैं। आपलोगोंके हृदयमें उनकी निरन्तर स्फूर्ति ही इस विषयमें प्रमाण है। यहाँ पर 'अप्रकट लीला' का अर्थ—समीपमें स्थिति न करके दूसरा अर्थ करनेसे असामञ्जस्य हो पड़ेगा, क्योंकि अन्तर्हृदयमें रहनेसे उनका दर्शन होगा ही—ऐसा कोई नियम नहीं है।

श्रीकृष्ण उद्धवके द्वारा गोपियोंके समीप जो सन्देश भेजते हैं, उसमें भी नित्य स्थितिकी बात है—

'भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।'

(भा. १०।४७।२९)

—आपलोगोंसे मेरा सम्पूर्णरूपमें कभी भी वियोग नहीं हो सकता ।

प्रकटलीलामें विराजमान एक प्रकाशमें वियोग है, तथा अप्रकट-लीलामें विराजमान दूसरे प्रकाशमें संयोग है; अतः सम्पूर्ण रूपसे वियोग नहीं है, यही तात्पर्य है ।

जबकि एक श्रीकृष्णविग्रहमें ही परस्पर विरुद्ध विविध शक्तियोंका आश्रय है, तब उनके विभिन्न प्रकाशोंमें विभिन्न क्रिया - प्रकाशोंकी विद्यमानता भी भ्रान्तिजनक नहीं है । श्रीकृष्णके विभिन्न प्रकाशोंमें नाना प्रकारकी शक्तियोंका अधिष्ठान रहनेके हेतु लीलारसके पोषणके लिए उन प्रकाशोंमें अभिमानका भेद रहता है तथा एक दूसरोंको न जाननेका भाव स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करते हैं । श्रीकृष्णके परिकरवर्ग भी उनकी स्वरूपशक्तिमय होनेके कारण अपने-अपने प्रकाशरूपको प्रकट करनेमें समर्थ हैं । श्रीकृष्ण जिस समय सोलह हजार राजकन्याओंके साथ विवाह कर रहे थे, उस समय देवकी और वसुदेव आदिकी भी प्रकाश मूर्त्तियोंका आविर्भाव नारदजीने देखा था । अर्थात् एक ही कृष्ण एक ही साथ सोलह हजार महलोंमें उतनी ही प्रकाशमूर्त्तिमें प्रकटित होकर सोलह हजार राजकन्याओंकी अलग-अलग पाणिग्रहणकी लीला कर रहे थे, उस समय देवकी और वसुदेव महाराज भी उतनी प्रकाश मूर्तियोंमें प्रकटित होकर प्रत्येक विवाह-मण्डपमें विद्यमान देखे गये । नारदने एक स्थानपर श्रीकृष्णको अपनी प्रिया और उद्धवके साथ पाशा खेलते हुए देखा, तो दूसरे स्थानपर कृष्णको उद्धवके साथ मन्त्रणा करते हुए देखा । इसी प्रकार देवकीजी भी एक स्थानपर माङ्गलिक आचार करती हुई और दूसरे स्थान पर कृष्णको न देखकर अत्यन्त उत्कंठितावस्थामें देखी गयीं । अतएव यदि द्वारकामें प्रकाशभेदमें विभिन्न प्रकारके अभिमान-भेद और क्रिया-भेद दृष्टिगोचर होता है, तो वृन्दावनमें ही वैसा क्यों नहीं संभव है? अर्थात् वृन्दावनमें भी वैसे ही विभिन्न प्रकाशमें विभिन्न क्रियाएँ आदि संभव हैं ।

श्रीकृष्ण उद्धवद्वारा गोपियोंको संदेश दे रहे हैं—

यथा भूतानि भूतेषु खं वायु वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाऽहं च मनः प्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥

(भा: १०।४७।२९)

आकाश आदि कारणरूप भूतसमूह अपने-अपने कार्यरूप भूतोंमें वर्तमान रहते हैं । आकाश वायुमें, वायु तेजमें, तेज जलमें और जल पृथ्वीमें स्थित है । उसी प्रकार मैं भी आपलोगोंके मन आदिके आश्रयरूपमें आपलोगोंमें नित्य विद्यमान हूँ । मैं न रहनेसे आपके मन और प्राण आदि मेरे वियोगमें क्षणभर भी नहीं टिक सकते ।

श्रीकृष्ण उद्धवके निकट वियोग और संयोग-दोनोंकी दशाओंका वर्णन करके दोनों ही दशाएँ एक ही समय जहाँ पर संभव हों, ऐसे एक विचित्र प्रकाशके विषयमें कहते हैं—

आत्मन्येवात्मनात्मनं सृजे हन्म्यनुपालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रिय गुणात्मना ॥
(भा. १०।४७।३०)

आत्म-मायानुभाव द्वारा भूतेन्द्रियगुणात्मा मैं आत्मामें आत्माका सृजन, संहार और पालन करता हूँ ।

यहाँ पर 'आत्मामें'=अनन्त प्रकाशमय श्रीविग्रहवाले अपनेमें, स्वयं 'आत्माका'=अपने विशेष प्रकारके प्रकाशका 'सृजन करता हूँ'=प्रकट करता हूँ । फिर कैसे सृजन करते हैं, उसे बतला रहे हैं—आत्मानुभव=अचिन्त्य-स्वरूप शक्तिके प्रभावसे अपनेको सृजन करता हूँ । भूतेन्द्रियगुणात्मभूत=परमार्थ सत्यस्वरूप मेरी इन्द्रियाँ, रूप और रस आदि जो सब गुण एवं उन सबके प्रकाशक स्वरूप हैं--उनके द्वारा सृजन करता हूँ । ऐसी प्रकाश मूर्त्तियोंमें आविर्भूत होकर भी पुनः कभी अन्यत्र गमन करता हूँ ('हन्मि' में हन् धातुका हिंसा और गति ये दो अर्थ प्रसिद्ध हैं । अतः यहाँ गमन अर्थ ही उपयुक्त है) और तदनन्तर पुनः कभी पालन करता हूँ अर्थात् स्वयं आकर अपने विरहमें तड़पते प्रिय-जनोंकी रक्षा करता हूँ ।

पूर्व श्लोकमें अप्रकट प्रकाशमें व्रजसुन्दरियों के सहित स्थितिका वर्णन करते हुए पक्षान्तर अवलम्बनपूर्वक बतला रहे हैं—

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्ति-स्वप्नजाग्रद्भिर्मनोवृत्तिभिरीयते ॥
(भा. १०।४७।३१)

यहाँ आत्मा=मैं श्रीकृष्ण आपलोगोंका प्रियतम, सुषुप्ति आदि लक्षणविशिष्ट मनोवृत्ति-समूह द्वारा अनुभूत होता हूँ । वह 'मैं' कैसा हूँ इसे कहते हैं—ज्ञानमय=नाना प्रकारकी विद्याओं में विदग्ध अर्थात् चतुर, शुद्ध=दोषरहित, व्यतिरिक्त=विगत है अतिरिक्त जिससे अर्थात् सर्वोत्तम; गुणान्वय=सर्वगुणशाली । अतएवं वही स्फूर्ति किसी समय साक्षात्कार जैसे प्रतीत होगी ।

सुषुप्ति अवस्थामें आत्माके अतिरिक्त अन्य किसी की भी स्फूर्ति नहीं होती । किन्तु व्रजगोपियोंकी सुषुप्ति अवस्थामें भी श्रीकृष्णकी स्फूर्ति होती है । जाग्रत और स्वप्न—इन दोनों अवस्थाओंमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य स्फूर्त्ति नहीं होती । परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें अन्तरिन्द्रिय या बाह्येन्द्रिय, किसी भी वृत्तिके उदयकी संभावना नहीं होती । परन्तु व्रजसुन्दरियोंकी जाग्रत और स्वप्नावस्थामें जो कृष्णानुभव या कृष्णस्फूर्त्ति होती है—वही अनुभव या स्फूर्त्ति उनकी सुषुप्ति-दशामें भी विद्यमान रहती है । जाग्रत लोगोंकी सुषुप्तिसे गोपियोंकी सुषुप्ति (समाधिलक्षण) का वैशिष्ट्य यह है कि गोपियाँ समाधिलक्षणवाली

सुषुप्ति दशामें भी श्रीकृष्णानुभव लाभ करती हैं। गरुड़ पुराणमें ऐसा कहा गया है—

जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिषु योगस्थस्य य योगिनः।
या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवेदच्युताश्रया ॥

अर्थात् जाग्रत - स्वप्न - सुषुप्ति अवस्थामें योगस्थ योगियोंकी मनोवृत्ति आदि सब कुछ अच्युतको आश्रय करके स्थित रहता है।

इस पर यदि गोपियाँ यह कहें कि हमलोग सभी अवस्थाओंमें तुमको अनुभव करती हैं; किन्तु हमें सब समय विरह-स्फूर्त्ति ही होती है— इसका उत्तर देते हुए कृष्ण यह कहते हैं कि मेरी वियोगिताभिमानी मनोवृत्तिको किसी प्रकार दूर कर देनेसे स्वतः ही नित्य संयोगिताभिमानी मनोवृत्ति उदित होगी और उसमें सर्वदा संयोगको ही स्फूर्त्ति होगी। इस विषयमें वे योगशास्त्रकी युक्ति दे रहे हैं—

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायते मृषावदुत्थितः।
तन्निरुन्धाद्विन्द्रियानि विनिद्रः प्रपद्यते ॥
(भा. १०।४७।३२)

सोकर उठा मनुष्य जिस प्रकार मिथ्याभूत स्वप्नकी चिन्ता करता है और इन्द्रियोंके विषयों आदिका जिस मनसे चिन्तन करता है तथा इन्द्रियाँ जिस मनके द्वारा उन्हें प्राप्त होती हैं, उस मनका निरोध करना चाहिए। यद्यपि व्रजरमणियाँ स्वप्नकी भाँति अज्ञान द्वारा अभिभूत नहीं हैं, फिर भी प्रकट लीलामें श्रीकृष्णकी अप्राप्ति हेतु अप्रकट लीलामें अनुभवसिद्ध नित्य संयोगका अनुसंधान करानेके लिए ही भगवान उनको ऐसा उपदेश दे रहे हैं। मनोनिरोधके अतिरिक्त विक्षिप्त चित्त होनेपर समीपवर्ती किसी विषयकी भी उपलब्धि नहीं होती। इसीलिये श्रीकृष्ण अप्रकट प्रकाशमें गोपियोंके निकट विराजमान रहने पर भी प्रकट लीलागत विरह-विक्षेपके कारण (विरहमें पागलिनी होनेके कारण) गोपियाँ कृष्णको अपने समीप नहीं देखतीं। इसलिए मनोनिरोधकी प्रशंसा करते हुए और भी कहते हैं—

एतदन्तः समाम्नायो योगः साख्यं मनीषिणाम्।
त्यागस्तपो दमः सत्यं सद्वान्ता इवापगाः ॥
(भा० १०।४७।३३)

जिस प्रकार विभिन्न स्थानोंसे निकलकर विभिन्न स्थानोंमें बहती हुई विभिन्न नदियाँ समुद्रमें सम्मिलित होती हैं, उसी प्रकार तप, अष्टांगयोग, सांख्ययोग, संन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय-दमन, और सत्य आदि विभिन्न साधन मनोनिरोधमें ही पर्यवसित होते हैं अर्थात् वे सभी मनोनिरोधके लिये ही होते हैं। वेद-वेत्ताओंने मनोनिरोधकी अत्यधिक प्रशंसा किया है। अतएव वियोगाभिमानी मनोवृत्तिका निरोध करने पर तुम लोगोंको भी मेरे साथ नित्य संयोगकी उपलब्धि होगी।

कृष्णके उपदेशको सुनकर गोपियाँ यदि यह कहें कि प्रियतम कृष्ण! हमलोग तुम्हारे विरहमें तड़प रही हैं। ऐसे दुःखके अवसर पर तुम हम विरहिणियोंको अपनी प्राप्तिके साधनका उपदेश

न देकर स्वयं ही हमलोगोंके निकट उपस्थित होकर दर्शन देते हो ? ऐसा मन-ही-मन सोचकर कृष्ण पुनः कह रहे हैं—

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यान कामया ॥
(भा. १०।४७।३४)

प्रिय गोपियों ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम लोगोंके नयनोंका ध्रुव तारा हूँ । तुम्हारा जीवन सर्वस्व हूँ । मेरे दर्शनोंके बिना तुम किसी प्रकार भी सुखी नहीं रह सकती । फिर भी मैं जो तुम लोगोंसे दूर रहता हूँ, उसका कारण यह है कि तुम मेरा निरन्तर ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहने पर भी मनसे मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रखो । प्रियजनके प्रति मनका आवेश जितना ही अधिक होगा, उतना ही अधिक आनन्द होगा । यदि मैं तुम्हारे समीप रहूँ, तो मनका आवेश उतना अधिक संभव नहीं । इसलिये—

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिराम्मामुपैष्यथ ॥
(भा. १०।४७।३६)

गोपियों ! अशेष वृत्तियोंसे रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुम लोग मेरा अनुकरण करोगी, तब शीघ्र ही सदाके लिए मुझे प्राप्त हो जाओगी ।

तदनन्तर दृष्टान्त-स्वरूप कहते हैं—

या मया क्रीड़ता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ।
अलब्धरासाः कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥
(भा. १०।४७।३७)

—कल्याणियों ! जिस समय मैंने वृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमा की रात्रिमें रास-क्रीड़ा की थी, उस समय जो गोपियाँ स्वजनोंके रोक लेनेसे व्रजमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास-विहारमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं । अतः तुम्हें भी मैं मिलूँगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसुधेव श्रौती महाराज

श्रीमद्भागवतके टीकाकार

श्रीधर स्वामी (२)

परिचय

श्रीधर स्वामी श्रीमद्भागवतकी प्राप्त सर्व प्राचीन टीका 'भावार्थ-दीपिका' के रचयिता हैं। भारतमें जितनी ख्याति उक्त टीकाकी हुई, उतनी अन्य किसी टीकाकी नहीं। समस्त विद्या क्षेत्रोंमें इसका पठन-पाठन बड़े आदर-पूर्वक किया जाता रहा है। किन्तु इतने प्रतिभा-शाली टीकाकारका विश्वसनीय परिचय उप-लब्ध नहीं होता। यहाँ तक कि उनके माता-पिता एवं वंश तथा शिष्य-परम्परा विषयक ज्ञान भी घोर अंधकारमें हैं। यहाँ हम यत्र-तत्र से लब्ध सामग्रीके आधारपर श्रीधर स्वामीके जीवन-वृत्तके विषयपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

श्रीधर नामक अनेक व्यक्ति साहित्यके क्षेत्र में आये थे। इनमें कतिपयके नाम एक विश्व-कोषमें उपलब्ध है, जो बंगभाषामें मुद्रित है[1] एवं गौड़ीय वैष्णव समाजमें आदर प्राप्त है। इस ग्रन्थमें—

(१) श्रीधर 'कोषकार'
(२) श्रीधर 'ज्योतिर्विद'
(३) श्रीधर आचार्य
(४) श्रीधर कवि
(५) श्रीधर यति
(६) श्रीधर दास
(७) श्रीधर सरस्वती

—ये सात नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें केवल श्रीधर यतिका उल्लेख भागवत टीकाकार के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। किन्तु एक कोषकारने इन्हें 'दानचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ का रचयिता लिखा है तथा इनका समय ९८९ ई० (सम्वत् १०४६) लिखा है। सं० १०४६ विक्रम न तो प्रसिद्ध भागवत टीकाकार का समय माना जा सकता है और न 'दानचन्द्रिका' के रचयिताका ही। प्रसिद्ध श्रीधर स्वामीने चित्सु-खाचार्यका उल्लेख किया है, जो शंकराचार्यकी शिष्य परम्पराके महान् स्तंभ थे एवं उनका समय १२वीं शताब्दीके समीप माना जाता है।

अतः श्रीधर स्वामी उक्त श्रीधर यतिसे भिन्न हैं।

विख्यात श्रीधर स्वामी

विख्यात श्रीधर स्वामीके परिचयके सम्बन्ध में यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ये किस देशके निवासी थे। इसका कारण है,

---

[1] विश्वकोष (बंगाक्षर) अतीन्द्रिय वेदान्तवाचस्पति, खण्ड २०, पृष्ठ ६६९, माध्व गौड़ीय प्रकाशन, कलकत्ता।

गुर्जरदेशीय विद्वानों एवं बंगदेशीय विद्वानोंके विभिन्न वाद जो श्रीधर स्वामीके सम्बन्धमें प्रचलित किये गये हैं।

श्रीधर महाराष्ट्र निवासी तथा गुजरात प्रवासी ब्राह्मण थे एवं काशीमें अधिक समय पर्यन्त परमानन्द नामक गुरुके समीप रहे थे। 'वेणीमाधवका धरहरा' उनका निवास-स्थल था। यह गुजरात प्रदेशके विद्वानोंका कथन है। इस पक्षकी पुष्टि गुजराती भाषा-भागवतमें सशक्त रूपसे की गई है[1]।

बंग देशीय विद्वान् इन्हें सुरेश्वरके वंशमें उत्पन्न बंगदेशीय गौड़ ब्राह्मण मानते हैं। उनका समर्थन है कि संस्कृत कालेज, कलकत्ताके अध्यक्ष स्व० 'महेशचन्द्र न्यायरत्न' श्रीधर स्वामीकी चौदहवीं अधस्तनमें थे[2]।

इस पत्रिकामें इन्हें बंगालके नन्दा ग्रामका निवासी माना है। किन्तु इसी सम्प्रदायके प्रसिद्ध कोषमें इन्हें महाराष्ट्र निवासी भी माना है[3]।

श्रीधर स्वामी गुजरात-प्रवासी महाराष्ट्र निवासी थे या बङ्गदेश निवासी, यह तो निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता, तथापि यह तो निश्चित है कि ये काशीमें निवास करते थे—

"माधवोमाधवाक्रीशौ" श्रीमद्भागवतके मंगलाचरणमें 'उमाधव' का उल्लेख 'वेणी माधव' के धुरेरासे सम्बन्धित है[4]।

गुजरात प्रदेशीय किम्वदन्तीके अनुसार श्रीधर स्वामी के एक पत्नी एवं एक पुत्र भी था। राज्याश्रय प्राप्त होनेके कारण ये गृहस्थको आर्थिक चिन्ताओंसे भी मुक्त थे[5]।

श्रीधर स्वामीकी चित्तवृत्ति गृहस्थमें नहीं रमी। वे विरक्त होनेका स्वप्न देखा करते थे। दैवयोगसे उनकी कल्पना मूर्तिमती बनी। उनकी पत्नीकी अकाल-मृत्यु हो गई। यद्यपि वे इस घटनासे प्रसन्न हुए, तथापि शिशुकी ममता उन्हें गृहस्थमें और भी अधिक जकड़ बैठी। गीताके पाठक होनेके कारण उन्हें संन्यास ग्रहणकी प्रेरणा प्रबल वेगसे उठती; किन्तु शिशुके मोह-बन्धनसे वे निकल नहीं पाते। उनका अन्तर्द्वन्द्व उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। एक दिन उनकी दृष्टि गीताके निम्नलिखित श्लोक पर पड़ी—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषांनित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९।२२)

---

१ गुजराती भाषा-भागवत, इच्छाराम, पृष्ठ १६, भूमिका—बम्बई

२ 'प्रवासी पत्रिका' माघ, १३५८ बंगाब्द; पृष्ठ ४१२

३ 'गौड़ीय वैष्णव अभिधान' पृष्ठ १३९० (बंगाक्षर)

४ श्रीमद्भागवत १।१।१ मंगलाचरण पद्य २

५ भागवत गुजराती भाषा पृष्ठ १६

अर्थात् "अनन्य भावसे मेरा चिन्तन करते हुए जो मेरी उपासना करते हैं, उनका योग-क्षेम वहन करता हूँ।"

श्रीधरने मनमें विचार कर दृढ़ निश्चय किया कि मैं प्रभुकी वाणीपर दृढ़ विश्वास नहीं करता, अन्यथा मुझे योग-क्षेमकी चिन्ता क्यों? इस चिन्तनके प्रवाहमें प्रवाहित श्रीधर स्वामी अपने घर आ पहुँचे। देहलीमें प्रवेश किया ही था कि सामने छत परसे एक अंडा पृथ्वीपर गिरा। गिरते ही वह अंडा फूट गया और उसमेंसे एक पक्षी-शावक निकला। वह क्षुधार्त्त था। दैवयोग से उसके चोंचके पास ही अंडेसे निकले द्रव-पदार्थपर एक छोटी-सी मक्खीका बैठी और उससे चिपक गयी। पक्षी-शावकने उसे आत्म-सात् कर लिया और चेतना प्राप्त की।

श्रीधर स्वामी बड़े ध्यानसे यह देख रहे थे कि प्रभु इसकी रक्षा किस प्रकार करते हैं। किन्तु यह घटना देख कर इन्हें भगवानपर पूर्ण विश्वास हो गया था। ईश्वर एक क्षुद्र जीवका पोषण करता है, तो क्या वह मेरे पुत्रका पोषण नहीं करेगा? श्रीधरने विचार किया कि मैं विद्वानोंकी कोटिमें गिना जाता हूँ एवं ईश्वर-ज्ञानके सम्बन्धमें अभिमान करता हूँ। इनका यशोगान भी करता हूँ; तथापि ईश्वरकी कर्त्तृत्व-शक्ति पर विश्वासहीन हूँ। गीताके श्लोकोंका अर्थ अनेक व्यक्तियोंको सुनाता हूँ; पर उनपर मेरा कितना विश्वास है? मुझे केवल अपने शिशुकी चिन्ता है; पर दीनबन्धु जगत् रक्षकको सब जीवोंकी चिन्ता है। श्रीधर स्वामीके मनका समाधान हो गया और वह गृहस्थाश्रमको त्याग-कर काशीमें आकर रहने लगे।

संन्यास-ग्रहणके उपरान्त श्रीधरके शिशुका पोषण राजाने किया[1]।

गीताकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उक्त किम्ब-दन्तीका आधार कही जा सकती हैं—

"न मे भक्तः प्रणश्यति" (गीता ९।३१)

"पटाहादि घोषपूर्वकं विवदमानां सतां गत्वा बाहुमुत्क्षिप्य निःशङ्कं प्रतिजानीहि प्रतिज्ञां कुरु कथं मे परमेश्वरस्य भक्तः सुदुराचारोऽपि न प्रणश्यति अपि तु कृतार्थ एव भवतीति।"[2]

—पटह आदि घोषपूर्वक विवादशील विद्वानों के मध्य बाहु उठाकर प्रतिज्ञा कर कि मुझ परमेश्वरका भक्त दुराचारी होने पर भी कृतार्थ हो जाता है।

द्वितीय किम्बदन्तीके आधार पर श्रीधर बाल्यावस्थामें महामूर्ख थे[3]। एक समय एक नृपति और उनके मन्त्रीवर्ग भ्रमणके लिए निकले। उनकी दृष्टि अपवित्र पात्रमें तैल लेकर आनेवाले श्रीधरपर पड़ी। उस समय राजा

[1] गुजराती भाषा-भागवत, पृष्ठ १६ भूमिका

[2] सुबोधिनी टीका गीता ९।३१

[3] कल्याण सन्त-अंक, पृष्ठ ४७३; गीताप्रेस, गोरखपुर

मंत्रीमें ईश्वरकी सामर्थ्यको लेकर विवाद चल रहा था। मंत्रीका कथन था कि ईश्वरकी उपासनासे मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान बन सकता है। राजाने श्रीधरको लक्ष्य करते हुए एवं इनकी चेष्टा तथा आकृति आदिसे महामूर्ख समझ कर कहा कि यदि यह व्यक्ति योग्य बने तो तुम्हारे कथनकी पुष्टि संभव है। मंत्रीने उक्त कथन सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की और श्रीधरको अपने साथ लाकर देवालयमें ठहरा दिया तथा दैनिक शिक्षा एवं ईश्वरकी आराधना प्रारंभ करवा दी गयी। यही श्रीधर कालान्तरमें अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता एवं भागवतकी भावार्थ-दीपिका टीकाके रचयिता बन गये।

तृतीय किम्बदन्ती यह है कि श्रीधर स्वामी गोवर्द्धन मठके अधिपति थे। किन्तु अनेक प्रमाणोंसे यह निर्णय किया जा चुका है कि गोवर्द्धन पीठके अधिपतिका नाम श्रीधरारण्य था। श्रीधरारण्यका उल्लेख भागवत-टीका, गीता-टीका एवं विष्णुपुराण-टीका आदिमें कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इन दोनों व्यक्तियोंके गुरुके नाम स्पष्ट हैं। श्रीधरारण्यके गुरुका नाम गोविन्दारण्य था, किन्तु भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामीके गुरुका नाम परमानन्द था[१]।

"यत् कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्"

अतः श्रीधर स्वामीको गोवर्द्धन पीठका अधिपति नहीं माना जा सकता[२]।

चतुर्थ किम्बदन्ती बंग देशस्थ कतिपय विद्वानों द्वारा प्रसारित की गई है। उसके अनुसार श्रीधर स्वामीका जन्म नन्दाग्राममें सुरेश्वरके वंशमें हुआ था। ये शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण थे एवं उनके संन्याससे पूर्वका नाम श्रीधराचार्य था। श्रीधरके पुत्रका नाम श्रीकर विद्यार्णव था। महेशचन्द्र न्यायरत्न इनके १४वें वंशज थे।

'जनमेजय घटक'[३], 'प्रवासी पत्रिका'[४], एवं हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके अध्यक्ष श्रीसिद्धेश्वर भट्टाचार्य[५] इस पक्षके प्रबल समर्थकों में हैं। श्रीभट्टाचार्यने प्रमाणित किया है कि—'नारायणाय' में 'आय' पदच्छेदका अर्थ बंग-देशकी मान्यताका द्योतक है।

उक्त मतसे श्रीधरको बंगदेश निवासी मानने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। किन्तु बहुतसे विद्वान् इस मतके समर्थक नहीं। ब्रज-देशकी मान्यताके अनुसार तो ये महाराष्ट्र ब्राह्मण ही थे और वहीं इनका जन्म-स्वाध्याय आदि हुआ था।

श्रीमद्भागवतके भावार्थ-दीपिकामें द्वादश-

---

[१] भावार्थ-दीपिका १।१।१ मंगलाचरण श्लोक ३

[२] गौड़ीयार तीन ठाकुर (बंगाक्षर) ८म माधुरी, पृष्ठ २४५

[३] कुलतत्त्व दर्शन—लेखक—जनमेजय घटक (बंगाक्षर) यशोहर, १२९५ बंगाब्द

[४] प्रवासी पत्रिका, माघ १३५८ बंगाब्द; श्रीदिनेशचन्द्र भट्टाचार्य लिखित—'श्रीधर स्वामीर कुल-परिचय आर काल-निर्णय, पृष्ठ ४११-४१४

[५] पत्र द्वारा प्राप्त मत दिनांक १३ जनवरी १९६६, हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी

स्कन्धमें एक कल्पित चित्र श्रीधर स्वामीका बनाया गया है। यह चित्र प्रायः सभी संस्करणोंमें एकसा ही है जिसमें महाराष्ट्रकी 'पगड़ी' एवं 'अंगरखा' पहिने हुए उन्हें चित्रित किया है। इससे यह विचार किया जा सकता है कि आजसे ८०० वर्ष पूर्वकी प्रतिमें उपस्थित यह चित्र अवश्य ही कुछ विचार-धाराओंके साथ बनाया गया होगा[1] और अन्य प्रतियोंमें भी इसका अन्वेषण किया जा सकता है।

अतः श्रीधर स्वामीको महाराष्ट्र देशका निवासी माना जा सकता है।

गुरु

श्रीधर अनेक शास्त्रोंके पारङ्गत विद्वान् थे, जैसा कि उनकी टीका परिशीलन द्वारा प्रमाणित होता है। तथापि उनकी इस अनुपम विद्याका स्रोत कौन है, यह ज्ञात नहीं। अन्तःसाक्ष्यके आधार पर यह निश्चित है कि इनके गुरु परमानन्द थे। गीताके प्रत्येक अध्याय एवं भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें एवं अधिकांश अध्यायों में परमानन्दका उल्लेख किया गया है। सुबोधिनी टीकामें—

(क) "दधानमद्भुतं वन्दे परमानन्द माधवम्"[2]।
(ख) "तं कृष्णं परमानन्दं तोषयेत् सर्वकर्मभिः"[3]।
(ग) "तं वन्दे परमानन्दं माधवं भक्तशेषाधिम्"[4]।
(घ) "तं वन्दे परमानन्दं नन्दनन्दनमीश्वरम्[5]"।

गीताके अठारहवें अध्यायमें इन्होंने अपने गुरुके साथ अपना भी उल्लेख किया है[6]।

श्रीभागवतकी भावार्थ-दीपिका टीकाकी रचना भी अपने गुरु परमानन्दकी प्रीतिके लिए ही की गयी थी। जैसा कि उनके वाक्य द्वारा सिद्ध है—

> श्रीपरमानन्द सम्प्रीत्यै गुह्यं भागवतं मया।
> तन्मेतेनेदमाख्यातं न तु मन्मति वैभवात्॥[7]

प्रथम स्कन्धमें परमानन्दके चरणकमलोंका भृङ्ग अपनेको लिखा है—

ज्ञात होता है कि श्रीधर स्वामीके दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु दोनों एक ही थे। अन्यथा वे शिक्षा गुरुका भी कहीं पृथक् उल्लेख अवश्य करते।

---

[1] भावार्थ दीपिका, सम्वत् १९५८ विक्रम; मुम्बई प्रकाशन

[2] सुबोधिनी टीका (गीता) १।१।१ मंगला० १

[3] " " " अध्याय ३

[4] " " " " ६ अन्त

[5] " " " " १३ अन्त

[6] सुबोधिनी गीता अध्याय १८ अन्तमें—परमानन्द श्रीपादरजः श्रीधारिणाधुना श्रीधर स्वामी मतिना कृता गीता सुबोधिनी।

[7] भावार्थ-दीपिका १२वें स्कन्धके अन्तमें मंगलाचरण आनीय श्लोक

सम्प्रदाय

श्रीधर स्वामी नामसे ऐसा अनुमान लगता है कि शायद वे संन्यास आश्रम एवं अद्वैत सम्प्रदायके थे। क्योंकि 'स्वामी' शब्द संन्यासाश्रमी शिष्योंको दिया जाता था। किन्तु अद्वैत सम्प्रदायसे—शङ्कराचार्य अनुमोदित अद्वैत नहीं अपितु प्राचीन अद्वैत सम्प्रदाय जिसमें प्रतिबिम्बया उपाधिवादकी रूढ़ता नहीं थी, मानना उपयुक्त होगा। इसकी मान्यताका प्रथम हेतु तो यह है कि श्रीधरने अपने पूर्ववर्ती मान्य श्रीशङ्कराचार्यका या उनके ग्रन्थोंका उल्लेख नहीं किया। द्वितीय यह कि वे भक्ति-क्षेत्रमें अग्रसर थे और वैष्णव सिद्धान्तोंका अनुसरण करते थे।

श्रीधर स्वामीकी अन्य अद्वैतवादी आचार्यों की भाँति अद्वैत सम्प्रदायके किसी ग्रन्थकी टीका-आलोचना आदि भी उपलब्ध नहीं होती। केवल सात्त्विक ग्रन्थ—विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण और गीता उनकी टीकाएँ उपलब्ध हैं। वेदान्तके विद्वान्के नाते उनका हृदय भक्त तथा मस्तिष्क वेदान्त रसमें परिपक्व था।

उनके मङ्गलाचरण राम, कृष्ण, शिव, नृसिंह की भक्तिसे परिपूर्ण हैं। रामका स्मरण भागवत टीकाके प्रारम्भमें है—

"श्रीमत्परमहंसास्वादित सकलं चरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय।"

उक्त मंगलाचरणके परमहंसकी व्याख्या करते हुए पं० बंशीधरने तीन भेद किये हैं—

(क) हंस—परमहंस—श्रीपरमहंस। हंसका कार्य है—दुग्ध और जलको पृथक् करना। (ख) परमहंस—चित् और जड़के भेदको जाननेमें निपुण होता है।

(ग) श्रीपरमहंस—चैतन्यनिष्ठ परमात्म-ध्यान में मग्न होता है।

यहाँ श्रीपरमहंस विशेषण उनके स्वत्वके सम्बन्धमें माना है[1]। इससे अद्वैत् अवस्थाका बोध होता है।

"भक्तजन मानस निवासाय—"

इस विशेषणसे श्रीधरके भक्त हृदयका मान सम्यक् परिलक्षित है। अद्वैतवादके विद्वान् मंगलाचरणोंमें प्रायः सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी वंदना करते हैं। किन्तु श्रीधर स्वामीने जो राम-कृष्णपरक मंगलाचरण लिये हैं, उनसे उनके भक्ति-क्षेत्र के रसरूपकी सत्ता सिद्ध होती है।

श्रीधर-स्वामी नृसिंहोपासक थे। उन्होंने नृसिंह भगवान्की बन्दना बड़ी तन्मयताके साथ की है—

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे॥
(भावार्थ-दीपिका १।१।१ मंगलाचरण)

---

[1] भावार्थ-दीपिका प्रकाशक १।१।१ उपक्रम

"अहं भजे" यह उनकी उस गाढ़ानुरागिता का द्योतक है। कतिपय विद्वान् तो उक्त मंगलाचरणके आधार पर एवं भगवान् रामचन्द्रका प्रत्येक स्कन्धमें ध्यान करनेके कारण उन्हें विशिष्टाद्वैतवादका अनुयायी सिद्ध करते हैं[१]।

किन्तु मध्य-सम्प्रदायमें भी नृसिंहकी स्तुति की गयी है[२]। अतः रामानुज सम्प्रदायमें उन्हें किस प्रकार माना जाय ? साथ ही वे कहीं श्रीरामानुज आचार्य - यामुनाचार्य आदिका उल्लेख अवश्य करते हैं, जैसा कि अन्य सम्प्रदायानुयायी टीकाकारोंने किया है। किन्तु रामानुज सम्प्रदायके विद्वानने इनकी टीकाका खण्डन किया है[३]।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय-मतकी झलक देख कर उन्हें कुछ विद्वान् उक्त सम्प्रदायका मान्य विद्वान् मानते हैं। श्रीचैतन्य सम्प्रदायमें (श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायमें) श्रीधर स्वामीका अत्यधिक मान है। श्रीधरकी वाणी न माननेवालेको श्रीचैतन्यदेवने 'वेश्या' जैसे शब्दोंसे अभिहित किया है—

"प्रभु हासि कहे—स्वामी ना माने जेइ जन।[४]
वेश्यार भितरे तारे करिये गणन।"
"श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन।
सब लोक मान्य करि करिबे ग्रहण॥"

श्रीधरको इस सम्प्रदायका कथन करनेके लिए एक और युक्ति कही गयी है। वह है—विष्णुपुराणकी टीकामें—अर्थापत्ति प्रमाणमूलक 'अचिन्त्य' शब्दका प्रयोग किया है। श्रीजीव गोस्वामीने इसे अचिन्त्यभेदाभेदकी सूचनाके रूपमें माना है।

एकादश स्कन्धमें श्रीधरने जीवको अल्पज्ञ एवं परमेश्वरको सर्वज्ञ लिखकर यह भी लिखा है कि जीव परमेश्वरके अधीन है, परमेश्वरकी सर्वज्ञता नित्य-सिद्ध है, चिद्रूपत्वमें दोनों अभिन्न हैं। अतएव जीव और परमेश्वरके मध्य अत्यन्त भेद नहीं; अपितु भेदाभेद है[५]।

"जीवेश्वरयोस्तु कथं भेदाभेद विवक्षया। अत आह अनादि इति। वैलक्षण्यं विसदृशत्वं नास्ति द्वयोरपि चिद्रूपत्वात्"।

"अतस्तयोरत्यन्तमन्यत्व कल्पना अपार्थाव्यर्था।"

गीतामें यह भाव देखा जाता है—परमेश्वर रूपी समुद्रसे जीवरूपी फेन पृथक् नहीं कहा जा सकता। जैसे फेनका पृथक् नाम-रूप कल्पित भी है और वस्तुतः वह समुद्र ही है, इसी प्रकार जीवका भेद भी है, और वस्तुतः वह परमेश्वरसे अभिन्न है।

---

[१] श्रीकमलनयनाचार्यजी वृन्दावन
[२] मध्व तात्पर्य-निर्णय मंगलाचरण
[३] भागवतचन्द्रचन्द्रिका ४।२।१६
[४] श्रीचैतन्य चरितामृत अन्त्य ७।१११, ७।१३१
[५] भावार्थ दीपिका ११।२२।१०

"भूतेषु स्थावर जङ्गमात्मकेष्वविभक्तं कारणात्मनाभिन्नं कार्यात्मना भिन्नमिव स्तितं च विभक्तम्, समुद्राज्जातं फेनादि समुद्रादन्यन्न भवति[२]।"

श्रीधर स्वामीके उपर्युक्त 'पद' कदम्बको व्याकरण व्युत्पत्तिके आधार पर इस सम्प्रदाय की ओर मान भी लिया जाय तो भी यह तो निर्विवाद है कि श्रीधर स्वामीके समयमें इस सम्प्रदायका उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं था। यह अचिन्त्यभेदाभेद मत श्रीचैतन्य महाप्रभुके पश्चात् प्रचलित हुआ।

अद्वैतवाद श्रीधरस्वामी

कतिपय विद्वानोंने श्रीधर स्वामीको मायावादका प्रबल समर्थक माना है। शुद्धाद्वैत जगत् की किम्वदन्तीके अनुसार श्रीवल्लभाचार्यने अपनी सुबोधिनी टीकाका प्रणयन श्रीधरस्वामी कृत भावार्थ दीपिकाके खण्डनके लिये ही किया था।

यदि श्रीधरस्वामीने वैष्णव अभिमत पक्ष ग्रहण किया होता तो वल्लभाचार्य उनके खण्डन की चर्चा क्यों करते ? यह एक प्रश्न है।

श्रीवल्लभाचार्य एवं चैतन्य महाप्रभुकी भेंट जब श्रीजगन्नाथ क्षेत्रमें हुई तो वल्लभाचार्यने अपनी सुबोधिनी टीका प्रदर्शित करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुजीसे कहा कि मैंने इस टीकामें श्रीधर स्वामीकी टीकाका खण्डन किया है। इस पर श्रीचैतन्य महाप्रभु क्षुब्ध हुए और उन्होंने श्रीधरको न माननेवालेको उचित नहीं ठहराया।

इससे यह तो सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य ने मायावादकी गन्धके कारण ही श्रीधरस्वामी की टीकाके खण्डनकी चर्चा कही थी।

परन्तु यह विचारणीय है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ही नहीं, अपितु उनके अनुगामी सभी विद्वान् श्रीधरका गुणगान करते हैं। श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जैसे भागवतके टीकाकारों ने न केवल उन्हें 'स्वामीचरण' शब्दसे अभिहित किया, अपितु उनका उच्छिष्ट ग्रहण हमने किया है—यह भी स्पष्ट लिखा है[१]।

यदि उक्त आचार्यगण श्रीधर स्वामीको मायावादका प्रबल समर्थक मानते तो अपनी टीकाओंमें अवश्य उनका खण्डन प्रस्तुत करते। उच्छिष्ट ग्रहण करनेवाला व्यक्ति किस प्रकार अपने श्रद्धेयके मतका खण्डन कर सकता है ? साथ ही उनके उपास्य श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने जिसे प्रमाणिक माना है, वह निन्दित नहीं कहा जा सकता।

---

[१] सुबोधिनी गीता १३।१६

[२] पीत श्रीगोपिका गीत सुधासार महात्मनाम्।
श्रीधर स्वामिनां किंचिदवाशिष्टं विचीयते॥

[सनातन, जीव गो० विश्वनाथ १०।३३।३ प.स.]

अतः श्रीधरमें कोई ऐसा गुणविशेष अवश्य था जिसके कारण उन्हें भारतीय सम्प्रदायाचार्यों ने सम्मान दिया है।

श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदायमें श्रीधरस्वामीका अत्यन्त गुणगान किया गया है एवं इन्हें सिद्ध किया है कि वे विष्णुस्वामी सम्प्रदायके थे। उन्होंने मध्व, रामानुज, शंकर प्रभृति आचार्यों का कहीं उल्लेख भी नहीं किया केवल 'विष्णु-स्वामी' का बहुवचनमें प्रयोग किया है। उनके ग्रन्थका भी उल्लेख किया है। अतः इस सम्प्रदाय का वैष्णव मानना उपयुक्त है। वेदान्तके मर्मज्ञ विद्वान एवं परमानन्दके शिष्यत्वके कारण उनका अद्वैत पक्ष कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है। किन्तु वे इसका निर्देश "स्वामी निर्बन्धयन्वितः तथा परमानन्द सम्प्रीत्यै" आदि शब्दोंके द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। अतः अद्वैतका उल्लेख प्राप्त भी हो तो उसे उनके गुरुके आग्रहका सूचक माना जा सकता है, उनका नहीं। वे तो परम वैष्णव एवं भावुक भक्त थे, यह उनकी टीका रचनासे स्पष्ट है। यही कारण है कि उनका समस्त वैष्णवोंने समादर किया है।

मायावादी पथ केवलाद्वैतवादी माना जाता है। इसके अनुसार निर्विशेष ब्रह्म ही परतत्त्व है, जब कि श्रीधर स्वामीने श्रीकृष्णको ही घनीभूत ब्रह्म नित्यमुक्त अव्यय माना है।

"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्" की व्याख्यामें स्पष्ट लिखा है—

"प्रतिष्ठा प्रतिमाघनीभूतं ब्रह्मैवाहम्[1]"। श्रीधर स्वामीने भगवद्विग्रह - नाम-रूप - गुण - विभूति-धाम तथा परिकरको नित्य माना है[2]। जब कि मायावादमें सब कुछ माया-ही-माया है।

मायावादमें उपाधिविशिष्ट सगुण - ब्रह्म ईश्वर है; किन्तु श्रीधर प्राकृत-गुण-अनभिभूत को ईश्वर मानते हैं। ब्रह्म ज्ञान मात्र ही नहीं, अपि तु ज्ञाता एवं सम्पूर्ण कल्याण गुणोंका आश्रय स्थान है—

'प्रभुरितीश्वरस्योपाधिवशता भावेननित्य-मुक्ततां दर्शयति' अयमभिप्रायः—सगुणमेव गुणैनभिभूतम् सर्वज्ञः सर्वशक्ति सर्वेश्वरं सर्व नियन्तारं सर्वोपास्यम् सर्वकर्मफल-प्रदातारम् समस्त कल्याणगुण निलयं सच्चिदानन्दं भगवन्तं श्रुतयः प्रतिपादयन्ति[3]।'

मायाके सम्बन्धमें श्रीधर स्वामीने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि माया ब्रह्म-की स्वरूपानुबन्धिनी स्वभावसिद्धा शक्ति है—

'परमेश्वरस्य शक्तिर्माया सत्त्वगुण विकारात्मिका सत्त्वादि गुणरहितस्य ब्रह्मणोऽपि स्वभाव सिद्धाः शक्तयः सन्त्वेव पावकस्य दाहकत्वादि शक्तिवत्[4]।

---

[1] सुबोधिनी टीका गीता १८।२७

[2] भावार्थ-दीपिका ८।६।७-९—'तन्मूर्त्तं सनातनत्वमपरिमेयत्वमुपपादयतिरूपमिति'

[3] भावार्थ-दीपिका १०।८७।२ एवं विष्णु-पुराण टीका ३।१-२

[4] सुबोधिनी टीका (गीता) ७।१८

मायावादमें माया अनिर्वचनीय है[1]। वह न सत् है और न असत् ही।

'सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिकानो'

मायावादमें मुक्तिका परत्व तथा भक्तिका नित्यत्व नहीं माना जाता; किन्तु श्रीधर स्वामी ने स्पष्टरूपमें भक्तिकी श्रेष्ठता मुक्तिसे भी बढ़ कर मानी है[2]।

'श्रुतिश्च मुक्तेरप्याधिक्यं भक्तेर्दर्शयति यथाह—यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षुवो ब्रह्मवादिनश्च' इति भाष्यकृद्भिः मुक्ता अपि लीलया-विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते इति।' वे चतुर्वर्ग को भक्तिके समक्ष तृणके समान मानते हैं[3]।

पद्यावलीमें श्रीधर स्वामीका एक पद्य है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि यदि श्रवण-कीर्तन तथा श्रीकृष्णकी सन्निधि प्राप्त है तो मुक्तिका प्रयोजन ही क्या है[4]?

अतः श्रीधरस्वामीका अद्वैतवादकी कतिपय मान्यताओंको किसी विशेष कारणसे अपनी टीकाओंमें ग्रहण किये जाने पर भी उनको शुद्ध वैष्णव कोटिमें रखना ही उचित होगा।

कतिपय मंगलाचरणके श्लोकोंके आधार पर उन्हें किसी सम्प्रदाय-विशेषसे सम्बद्ध करना उचित नहीं। क्योंकि उन्होंने हरिहरकी भी वन्दना की है, तो शैव पन्थी अपना कहें तो आश्चर्य की बात न होगी[5]।

विष्णुपुराणकी टीकामें बिन्दुमाधवका स्पष्ट निर्देश है—

अथातः पंचमांशे श्रीकृष्णलीला महोदयः।
बिन्दुमाधवतोषाय यथामति वितन्यते॥[6]'

स्पष्टरूपेण यदि किसी सम्प्रदायाचार्यका उल्लेख किया है तो वे विष्णुस्वामी हैं। इनके नामनिर्देशमें श्रीधरने संकोच नहीं किया। इतना ही नहीं, श्रीधर स्वामीने विष्णु स्वामीके वचन भी उद्धृत किये हैं[7] तथा उनका नामनिर्देश

---

[1] वेदान्त-सार ले०—सदानन्द पृष्ठ १७

[2] भावार्थ-दीपिका १०।८१।२१

[3] भावार्थ-दीपिका १०।८१।२१
त्वत्कथामृत पाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम्॥

[4] पद्यावली—रूप गोस्वामी १५-२८-४३ संख्या

[5] भावार्थ-दीपिका भा. १।१।१ श्लोककी टीकामें—
माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धि विधायिनौ।
वन्दे परस्परात्मनौ परस्परनतिप्रियौ॥

[6] आत्मप्रकाश टीका (विष्णु-पुराण) टीकारंभके मंगलाचरणमें

[7] भावार्थ-दीपिका १।७।६ 'तदुक्तं विष्णुस्वामिभिः'

भी किया है। अत: उन्हें विष्णुस्वामी सम्प्रदायानुवर्ति ही मानना चाहिए।

स्थितिकाल

श्रीधर स्वामीके समयका अभी तक कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं है। इसका मूल कारण यह है कि इन्होंने अपने जन्म सम्बत् आदिके बारेमें कुछ भी नहीं लिखा है।

बाह्य साक्ष्य एवं अन्त:साक्ष्यके आधार पर साथ ही टीकाकारोंको प्राधान्य देते हुए हम उनका काल निर्णय करनेका प्रयत्न करेंगे।

भागवतकी आठ टीकाओंके साथ मुद्रित टीकाओंमें सिद्धान्त-प्रदीपके टीकाकार अर्वाचीन हैं। इस टीकाके रचयिता 'शुकसुधी' सम्बत् १९२६ में विद्यमान थे। इन्होंने श्रीधरकी टीका की अक्षर सम्पत्तिके ग्रहणके साथ उनका उल्लेख भी किया है[१]।

शुक सुधीने भागवत-टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्तीका भी उल्लेख किया है[२]। विश्वनाथ चक्रवर्तीने सम्वत् १७६३ (१७०६ ई०) में सारार्थ-दर्शिनी टीका लिखी। इन्होंने श्रीधर स्वामीके नामका अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है[३]।

विश्वनाथ चक्रवर्तीने श्रीजीव गोस्वामीका एवं सनातन गोस्वामीका उल्लेख किया है[४]। जीव गोस्वामीने भागवत पर क्रम-सन्दर्भ नामक ग्रन्थ रचा। इसके आरंभमें इन्होंने स्पष्ट लिख दिया है—

> श्रीधरस्वामीभिर्व्यक्तं
> यदव्यक्तं चास्फुटं क्वचित्।
> तत्र तत्रैव विज्ञेयः
> सन्दर्भ क्रमसंज्ञकः॥[५]

जीव गोस्वामीने सनातन गोस्वामीका उल्लेख किया है। ये समकालीन थे। जीव गोस्वामी सनातनके कनिष्ठ भ्राता वल्लभके पुत्र थे। सनातन गोस्वामीने श्रीमद्भागवतकी 'बृहद्वैष्णव तोषिणी' टीकामें श्रीधरस्वामीके उच्छिष्ट ग्रहण का संकेत दिया[६] है।

—विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी,
साहित्यरत्न, एम.ए.पी.एच.डी.

---

[१] भावार्थ-दीपिका ३।१२।१ 'तदुक्तं विष्णुस्वामिभिः'

[२] सिद्धान्त प्रदीप ३।५।३८

[३] सारार्थदर्शिनी (श्रीमद्भागवतके १।१।१ और ३।२५।३५ तथा १०।१।१ श्लोकोंकी टीका)

[४] सारार्थदर्शिनी (३।२५।३५ श्लोककी टीका)

[५] क्रमसन्दर्भ १।१।१ मंगलाचरणमें

[६] बृहद्वैष्णवतोषिणी

सम्राट् कुलशेखरकी प्रार्थना

(पूर्व प्रकाशित वर्ष १३, संख्या ७, पृष्ठ १५५ से आगे)

जयति जयति देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयति जयति कृष्णो वृष्णिवंश प्रदीपः ।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयति जयति पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥

श्रीश्रीदेवकीनन्दन हरिकी जय हो, जय हो। उन भगवान श्रीकृष्णको जय हो, जय हो, जो वृष्णिवंशके प्रदीप स्वरूप होकर अवतीर्ण हुए हैं। नवघनश्याम कोमलाङ्ग श्रीकृष्णकी जय हो, जय हो। पृथिवीका भार नाश करनेवाले भगवान मुकुन्दकी जय हो, जय हो।

इस स्तोत्रमें भगवान श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। विष्णुतत्त्वके मूल-स्वरूप आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णका अप्राकृत श्रीअङ्ग नवघनश्यामल है और अत्यन्त कोमल है। इस कथनके द्वारा भगवानके निराकारत्वका सम्पूर्णरूपसे निराकरण किया गया है। निर्विशेष, निराकार ब्रह्मके श्यामलाङ्ग या कोमल-शरीर होना असम्भव है। भगवानका श्रीविग्रह जीवके अप्राकृत इन्द्रियों द्वारा अर्थात् सब प्रकार के बाधाओंसे रहित, एकमात्र कृष्ण-सेवा तात्पर्ययुक्त निर्मल इन्द्रियों द्वारा ही इसका अनुभव किया जा सकता है। प्राकृत जड़ इन्द्रियों द्वारा भगवानके नाम-रूप-गुण-लीलादि ग्रहण किये नहीं जा सकते। अप्राकृत इन्द्रियों द्वारा ही उनके श्रीअङ्गका शोभा-वैशिष्ट्य या सौन्दर्य —"असिताम्बुद-सुन्दराङ्गम्" या नवघन श्याम कृष्णवर्णयुक्त सुन्दर श्रीअङ्गका दर्शन प्राप्त होता है। निराकार, निर्विशेष ज्योतिस्वरूप ब्रह्म भगवानके श्रीअङ्गकी ज्योतिमात्र हैं। ईशोपनिषद्में कहा गया है—"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्"। अर्थात् उस परमात्मा भगवानका स्वरूप ज्योतिर्मय पात्रमें छिपा हुआ है। भगवान् अपनी आत्ममाया या अन्तरङ्गा शक्तिके प्रभावसे अपने नित्यरूप वासुदेवके रूपसे देवकीपुत्र होकर अवतीर्ण हुए थे। भगवान अज (जन्मरहित) होकर भी उनके अत्यन्त प्रिय भक्तों पर कृपा करनेके लिए उनका पुत्रत्व भी स्वीकार कर लेते हैं। पूर्वजन्ममें वसुदेव और देवकीने सुतपा और पृश्निरूपसे भगवानको पुत्र-रूपमें पानेके लिए कठोर तपस्या की थी। इस लिए भगवान श्रीकृष्णने देवकीनन्दन या यशोदा-नन्दनके रूपमें आविर्भूत् होकर उन्हें आनन्द प्रदान किया।

भगवान श्रीकृष्ण चतुर्भुज वासुदेव रूपसे देवकी-वसुदेवके साम्ने प्रकट हुए। पश्चात् पितामाताके अनुरोधसे द्विभुज रूप धारण कर माताकी गोदमें 'प्राकृत शिशु' साधारण

शिशुकी तरह खेलने लगे । यहाँ भगवानका आविर्भाव हुआ था । भगवान् अपनी आत्ममाया के द्वारा सर्वत्र अखिलात्मा (सर्वव्यापी परमात्मा) रूपसे निवास करते हैं । वे जिस किसी स्थानमें, जिस किसी अवस्थामें स्वयं अपने आपको प्रकटित कर सकते हैं । इसलिए यदि कोई कहे कि भगवान प्राकृत शरीरयुक्त हैं—तो ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है । जो व्यक्ति भगवानके शरीरको प्राकृत जड़ शरीरमात्र समझते हैं, वे भगवानके चरणोंमें भयङ्कर अपराधी हैं । भगवान यदि इच्छा करें, तो वे उनकी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे सभी प्राकृत वस्तुओंकी भूमिका में अपनी अप्राकृत वस्तुसत्ता प्रकाश कर सकते हैं । इसका उदाहरण शास्त्रोंमें प्रचुर पाया जाता है । इसलिए भगवानके शरीरको प्राकृत शरीर समझना बुद्धिमान व्यक्तियोंका कार्य नहीं है । अतएव श्रीमद् भगवद्गीतामें स्वयं भगवानने अपने ही श्रीमुखसे कहा है कि जो व्यक्ति तात्विक बुद्धियुक्त हैं, वे ही उनके अप्राकृत जन्म-लीलादि के बातको समझनेमें समर्थ होते हैं और वे लोग अन्तकालमें भगवानको तत्त्वतः जानकर प्राकृत शरीरका परित्याग कर भगवानके धाममें गमन करते हैं । जीवोंके लिए शरीर-त्यागकी बात कही गई है, किन्तु भगवानके लिए कहीं भी शरीर त्यागकी बात नहीं कही गयी है । जहाँ भगवानके शरीर-त्यागका अभिनय दिखलाया गया है, वहाँ केवल असुर-मोहिनी लीलामात्रका प्रकाश किया गया है । उसका वास्तविक तात्पर्य अत्यन्त गूढ़ और गम्भीर है । उसे जानना हमारा परम कर्त्तव्य है । हमें सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान देवकीनन्दन श्रीकृष्ण और एक साधारण व्यक्तिमें कोई तुलना ही नहीं हो सकती । भगवान श्रीकृष्णकी लीलाएँ प्राकृत नरचेष्टाकी तरह प्रतीत होने पर भी प्राकृत नहीं, परन्तु अप्राकृत और अचिन्त्य हैं । सूर्य जिस प्रकार साधारण लोगोंकी दृष्टिमें पूर्व दिशासे उदित होते हैं, उसी प्रकार परम ब्रह्म भगवान् देवकीनन्दनरूपसे प्रकटित हुए थे । साधारण व्यक्ति समझते हैं कि सूर्य पूर्व दिशामें उदित होकर पश्चिम दिशामें डूब जाते हैं । किन्तु बात तो ऐसी नहीं है । वे सर्वदा ही सर्वत्र विराजमान हैं । पृथिवीकी गतिविधिके क्रमानुसार सूर्य कहीं देखे जाते, कहीं देखे नहीं जाते । उसी प्रकार जीव भी द्वन्द्व-मोहके द्वारा आच्छादित होकर भगवानको देख नहीं पाते । भाग्यवान व्यक्ति प्रेमाञ्जनच्छुरित-भक्ति-चक्षु (प्रेम-रूपी अञ्जन द्वारा रञ्जित नेत्रों) द्वारा सर्वदा ही भगवानके दिव्य श्यामसुन्दर रूपका दर्शन करते रहते हैं ।

वे भगवान एक होकर भी अपनी अनन्त शक्तिके द्वारा भीतर-बाहर सर्वत्र ही वर्त्तमान हैं । यह उनके अचिन्त्यभेदाभेदत्वका परिचय है । वे परमात्माके रूपसे प्रत्येक अणुपरमाणुमें भी निवास करते हैं । इन रूपोंके अलावा वे अपने धाममें माता - पिता, सखा-सखी, प्रिय-प्रियाओंके साथ आनन्द-चिन्मय-रसका परस्पर आदान प्रदान करते हुए वैकुण्ठ जगतके सर्वोच्च स्थान गोलोक—वृन्दावनमें निवास करते हैं ।

पूर्वश्लोकमें ये सभी बातें विचारित हुई हैं। किन्तु अल्पबुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति भगवानकी इस प्रकारकी आविर्भाव तिरोभाव या प्रकट-अप्रकट लीलाको न समझकर भगवानको मनुष्य समझते हैं और मनुष्यको भगवान समझते हैं। वे लोग भगवानके चरणोंमें अपराधी हैं।

भगवान मनुष्यके मनोधर्म राज्यके भीतर आबद्ध नहीं हैं। वे स्वराट् (स्वतन्त्र), अभिज्ञ (सर्वज्ञ) और परतत्त्व पुरुष हैं। वे स्वयं दया करके अपना तत्त्व सेवोन्मुख जीवके निकट प्रकाश करते हैं। जो व्यक्ति सेवोन्मुख नहीं हैं, वे लोग भगवानकी बहिरङ्गा शक्ति द्वारा प्रभावित होकर देहात्मबुद्धिरूप विवर्त्त द्वारा चालित होते हैं। अतएव वे लोग भगवानको तत्त्वतः जाननेमें असमर्थ हैं। तत्त्ववस्तु परमेश्वर भगवान श्रीकृष्णरूपी चरमोत्कर्ष अवस्थामें मूर्त्तिमानरूपसे विराजमान हैं। उन्हींके व्यक्तित्वके प्रभाव नाना प्रकारकी शक्तिके रूपसे प्रकाश पाते हैं। जिस प्रकार आग एक स्थानमें रहकर भी अपना ताप और प्रकाश सर्वत्र विस्तार करता है, उसी प्रकार परब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी शक्तिका परिचय सर्वत्र पाया जाता है। इस परिचयका अनुभव ही शाक्त अवस्था है। शुद्ध शाक्त अवस्थामें जीव भगवानके दास स्वरूपसे अवस्थित हैं और अशुद्ध शाक्त अवस्थामें जीव भगवद्विमुख होकर अपना स्वरूप भूलकर भौतिक मायाके दास हैं। अतएव जीवमात्र ही कृष्णका नित्यदास है। मुक्त जीव वैकुण्ठवास प्राप्तकर अपने चिदानन्दमय स्वरूपसे भगवानकी साक्षात् सेवा करते हैं और इसके विपरीत बद्ध जीव अनादि कालसे भगवद्विमुख होकर मायिक जगतमें वास करते हुए त्रितापों द्वारा जर्जरित हैं। वे भौतिक शरीर धारण कर सदा उद्वेग और पीड़ाको प्राप्त करते हैं।

अल्पबुद्धिवाले व्यक्ति भगवानकी विविध शक्तियोंको न जानकर एक आंशिक विचारसे उन भगवानके प्रथम परिचयरूप विराट् रूप या निर्विशेष रूपके प्रति ही आकृष्ट होते हैं। इस प्रकार वे भगवानके परमभावरूप चिद्-वैशिष्ट्य को दर्शन करनेमें असमर्थ हैं। परम तत्त्व भगवान की अचिन्त्य शक्तिका परिचय जिन्हें प्राप्त नहीं हुआ है या जो उसे स्वीकार नहीं करते, उनका तत्त्वज्ञान असम्पूर्ण है। भौतिक जगतमें भी जो सभी अलौकिक शक्तिके प्रभाव देखे जाते हैं, वे सभी ही भगवानकी विभूति हैं। इसलिए भगवानने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—"यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं ··· मम तेजांश संभवः।"

भौतिक जगतमें जो आणविक या अन्यान्य शक्तिका परिचय मिलता है, उसे भी भगवानकी विभूति ही जानना चाहिए। इस भौतिक शक्तिसे जीव शक्ति श्रेष्ठतर शक्ति है। क्योंकि जीवशक्तिके अधीनमें ही भौतिक शक्ति कार्य करती है। इन समस्त शक्तियोंके अध्यक्ष रूप परमेश्वर भगवानसे नपुंसक निर्विशेष ब्रह्म कदापि स्वतन्त्र नहीं है। तार्किक, असम्पूर्ण दर्शनयुक्त व्यक्ति ही भगवानके व्यक्तित्वको सर्वदा अस्वीकार

करते हैं । भौतिक शक्ति और जीव शक्तिसे श्रेष्ठतम चित्शक्ति है । यही भगवानकी 'आत्म-माया' कहलाती है । जीव शक्तिके प्रभाव द्वारा चित् शक्तिका थोड़ा बहुत आभास पाया जाता है । भौतिक शक्ति निकृष्ट होनेपर भी भगवानकी पूर्णशक्तिके अन्तर्गत है । भगवान अनन्त शक्तिके आधारस्वरूप परमेश्वर हैं ।

भगवान अनन्त शक्तिके आधार होकर भी वे किसी-किसी विशेष शक्तिके प्रेमाधीन होकर उस-उस शक्तिके द्वारा अपनी स्वरूप शक्ति या ह्लादिनी शक्तिका परिचय प्रदान करते हैं । जो सभी शक्तियाँ केवलमात्र भगवानकी अधीनता स्वीकार करती हैं, उनकी अपेक्षा जो शक्तियाँ भगवानको प्रेमाधीन कर अपने अधीन तत्त्व बना लेती हैं, वे सभी शक्तियाँ भगवानके अत्यन्त प्रिय हैं । क्योंकि भगवान् प्रेमाधीन होकर ही अधिक आनन्दका अनुभव करते हैं । जिन सभी भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर भगवान् आनन्द अनुभव करते हैं, उन भक्तोंके प्रेमका परिचय विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव, संचारी भाव, महाभाव आदि चिद्-वैचित्र्य द्वारा पाया जाता है । चिन्मात्रवादी निर्विशेषज्ञानी रस बोधरहित क्षुद्र व्यक्तियोंका उन-उन प्रेमावस्थाओंमें कदापि प्रवेश या अधिकार नहीं है ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

भजो रे मन नंदकुमार

सब तजि भजिए नन्द-कुमार ।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार ॥
जिहिं-जिहिं जौनि जन्मधारयौ, बहु जोरयौ अघकौ भार ।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार ॥
वेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार ।
भव-समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार ॥
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार ।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि दुर्लभ फिरि संसार ॥

(सूरदासजी)

श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

(वर्ष १४, संख्या १-२ पृष्ठ १८ से आगे)

व्रजरमणियोंने ज्ञानी भक्त उद्धवके ज्ञान-प्रेम-उदार भावोंसे समन्वित व्रजेश श्रीकृष्णका संदेश विरह व्याकुल चित्तसे श्रुतिपथमें ग्रहण किया। परंब्रह्मके स्वरूपको भी सुना, उद्धवकी मनमोहक निराली उक्तियोंकी छटाका पान भी किया।

भगवान् व्रजराज श्रीकृष्णका संदेश श्रवण कर धीरे-धीरे उनकी विरह-व्यथा कम प्रतीत होने लगी। वे इन्द्रियातीत परम प्रभु व्रजेन्द्र-नन्दनको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र देखने लगीं।

अन्तमें उन्होंने बड़े प्रेम और आदरसे कृष्ण-सखा उद्धवका सत्कार किया। उद्धवजी गोपियों की विरह व्यथाको शान्त करने—उन्हें ढाढ़स देने वहीं कुछ समय तक रहे। उस अवसर पर वे बीच-बीचमें श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर व्रजवासियोंको आनन्दित करते रहे। श्रीकृष्ण-प्रेमी उद्धव द्वारा की गई भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंकी चर्चासे व्रज-वासियोंको लम्बा समय भी एक क्षण जैसे प्रतीत होने लगा।

प्रेमी भक्त उद्धव कभी यमुना नदीके सुकोमल तटपर जाते, कभी श्रीकृष्ण पदाङ्कित वनोंमें विहार करते, कभी श्रीकृष्णके प्रिय हरिदासवर्य गिरिराज गोवर्द्धनकी सुन्दर सुखद सुहावनी घाटियोंमें विचरण करते, कभी यहाँ वहाँ अपनी हरियालीको बिखेरते, झूमते, विविध रूपरंगके लुभावने पुष्पोंसे लदे फलोंसे परिपूरित वृक्षोंमें रम जाते और भाव-विभोर होकर पूछ बैठते—यहाँ भगवानने कौन-सी लीला की थी, वहाँ कौन-सी लीला की थी? इस प्रकार बार-बार पूछते और व्रजवासियोंसे श्रीकृष्णकी लीलाओंकी महिमा कहते-कहते उन्हें भावमग्न करा देते।

उद्धवने व्रजमें निवास करते समय गोपियोंकी अनेक प्रकारकी प्रेम-विकलता और प्रेम-चेष्टाओं के दर्शन किये। वे उनकी श्रीकृष्णमें प्रेम-तन्मयता देखकर आनन्द महोदधिमें मग्न होते रहे और गोपियोंको नमस्कार करते हुए इस प्रकार गानेमें तत्पर रहने लगे—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥
क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परम ।। रूढभावः।
सन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥
(भा० १०।४७।५८,५९)

इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है, क्योंकि वे सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्यभावमें स्थित हो गई हैं। प्रेमकी यह उन्नत अलौकिक स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनों को, बड़े-बड़े मुनियोंको, मुक्त पुरुषोंको और हम भक्तजनोंको भी अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। यह बात सत्य ही है कि जिन्हें भगवान श्रीकृष्णकी लीला कथाके रसका स्वाद लग गया है, उन्हें कुलीनता, द्विजातिके योग्य संस्कार और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी आवश्यकता ही नहीं है। यदि भगवत्कथा रसमें प्रेम नहीं हुआ है, तो अनेक कल्पों तक बार-बार ब्रह्माके जन्म प्राप्त करनेसे भी क्या लाभ है ?

कहाँ ये वनमें विचरण करनेवाली आचार, ज्ञान और जातिसे हीन गाँवोंकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्द परात्पर भगवान श्रीकृष्णमें अनन्य परम प्रेम ! अहो ! धन्य है ! धन्य है ! इससे सिद्ध है कि कोई भगवानके स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करें, उनका भजन करें, तो वे स्वयं अपनी शक्ति से, अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पान कर ले, तो वह अपनी वस्तुशक्तिसे पीनेवालेको अमरत्व प्रदान कर देता है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥
(भा० १०।४७।६०-६१)

भगवान श्रीकृष्णने रासलीलाके समय इन व्रज युवतियोंके गलेमें भुजाएँ डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये; इन्हें भगवान्‌ने जिस कृपा प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेम दान किया, वैसा भगवानकी परम प्रेममयी नित्य सङ्गिनी वक्षःस्थल पर सर्वदा निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीजीको प्राप्त नहीं हुआ या कमलके समान सुगन्ध धारण करनेवाली और अपूर्व कान्तियुक्त देवाङ्गनाओंको भी नहीं मिला; फिर दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या कहा जाय ?

मेरा परम सौभाग्य तो इसीमें है कि मैं इस वृन्दावन धाममें कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि (जड़ी-बूटी) ही बन जाऊँ। अहा ! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिए प्राप्त होती रहेगी। इनके चरणरजमें स्नान कर मैं धन्य हो जाऊँगा। ये गोपियाँ धन्य हैं; यह सभी के लिए समझने योग्य बात है कि जिन स्वजन सम्बन्धियोंको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन्हें इन्होंने छोड़ दिया है, और लोक-मर्यादाका परित्याग कर भगवानकी पदवीको प्राप्त कर लिया है तथा उनके प्रेमकी अधिकारिणी हुई हैं। और की तो बात ही क्या है, भगवद्वाणी स्वरूप,

उनकी निश्वासरूप श्रुतियाँ और उपनिषद् भी अब तक जिन भगवानके स्वरूपको ढूँढती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पाती उसे इन्होंने अपनी अपूर्व भक्तिके द्वारा प्राप्त कर लिया है।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी उपासना करती रहती हैं; ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान श्रीकृष्णके उन्हीं चरणारविन्दोंको रासलीलाके समय गोपियोंने अपने वक्षःस्थल पर धारण किया और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदयकी जलन, विरह-वेदनाको शान्त किया।

ऐसा नन्दबाबाके व्रजमें रहनेवाली गोप ललनाओंकी चरणधूलिको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ, उसे सिर पर चढ़ाता हूँ। अहा! इन गोपियोंने भगवान श्रीकृष्णकी लीला-कथाके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा सर्वदा करता रहेगा।

इस प्रकार व्रजवासियों, व्रजरमणियोंके साथ मनमोहन श्यामकी लीला-रसमाधुरीका आस्वादन करते हुए उद्धवने कई मास व्रजमें बिताये। अनन्तर मथुरा प्रस्थान करनेके लिए उद्धवजीने गोपियोंसे, नन्दबाबासे यशोदासे आज्ञा माँगी। गोपोंसे बिदा लेकर रथ पर बैठे उद्धव नन्दबाबा गोपगणोंने बहुत-सी भेंट दी। नन्दरानी भी नवनीत और बाँसुरी ले आयी। फिर जाते समय उद्धवजीसे कहा—हे उद्धव! हमारी एक-एक वृत्ति, एक-एक संकल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें ही लगा रहे। वाणी निरन्तर उनके नामोंका स्मरण करे, शरीर उन्हींको प्रणाम करे, उन्हीं की सेवामें लगा रहे। हम जिस योनिमें भी जन्म लें, हमारी प्रीति श्रीकृष्णमें ही बनी रहे।

इस भाँति अनेक बातोंको सुनकर उद्धवने अपने हृदयको कठोर कर भीगे नेत्रोंसे व्रजसे गमन किया और हतमना मथुरा नगरी पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने श्रीकृष्णका दर्शन किया।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने सर्वप्रथम श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियोंकी प्रेममयी भक्तिका उद्रेक जैसा उन्होंने देखा था, वह कह सुनाया। वहाँकी स्थितिका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया और लाई हुई भेंट-सामग्रियोंको सभी लोगोंको बाँट दी।

(क्रमशः)

—बागरोदी कृष्णचन्द्रजी शास्त्री
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

युगल स्वरूपका ध्यान

रे मन, करु नित-नित यह ध्यान ।
सुन्दर रूप गौर श्यामल छवि, जो नहिं होत बखान ॥
मुकुट शीश चन्द्रिका बनी, कनफूल सुकुण्डल कान ।
कटि काछिनि सारी पग नूपुर, बिछिया अनवट पान ॥
कर कंकन चूरी दोऊ भुज पे, बाजू सोभा देत ।
केसर खौर बिन्दु सेंदुर को, देखत मन हरि लेत ॥
मुख पे अलक, पीठ पे बेनी, नागिनि सो लहरात ।
चटकीले पट निपट मनोहर, नील पीत फहरात ॥
मधुर-मधुर अधरन बंसी धुनि, तैसी ही मुसकानि ।
दोउ नैन रस भींनी चितवनि, परम दया की खानि ॥
ऐसो अद्भुत भेष विलोकत, चकित होत सब आय ।
हरीचंद बिनु जुगल कृपा यह लख्यो कौन पे जाय ॥

—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

(प्रेषक—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न)

गोपियोंके अतृप्त नैन

नैना घूँघट मैं न सभात ।
सुन्दर बदन नन्दनन्दन को, निरख-निरख न अघात ॥
अतिरस लुब्ध महा मधु लम्पट, जानत एक न बात ।
कहा कहौं दरसन सुख माते, ओट भएँ अकुलात ॥
बार-बार बरजत हौं हारी, तऊ टेव नहिं जात ।
सूर तनक गिरिधर बिन देखें, पलक कलप सम जात ॥

प्रचार प्रसंग

श्रीश्री जगन्नाथदेवजीका रथयात्रा-महोत्सव

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें गत ११ आषाढ़, २५ जून से २३ आषाढ़, ७ जुलाई तक श्रीश्री जगन्नाथदेवजी का रथयात्रा-महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। यह उत्सव श्रीधाम नवद्वीपमें अभिनव था। इस वर्ष श्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिके कारण उत्सवमें विशेष उत्साह रहा। १३ आषाढ़को गुण्डिचा मार्जन, १४ आषाढ़को रथयात्रा, १८ आषाढ़को श्रीहेरा-पंचमी या श्रीलक्ष्मी विजय और २२ आषाढ़को पूर्ण रथयात्राके महोत्सव सम्पन्न हुए। उत्सवमें आयोजित सभाओंमें श्रील आचार्यदेव, विभिन्न त्रिदण्डिचरणों तथा ब्रह्मचारियोंके प्रवचन कीर्त्तनादि हुए हुए हैं। छाया चित्र द्वारा श्रीगौरलीला और श्रीकृष्ण लीलाकी विभिन्न निगूढ़ शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया। निमन्त्रित अनिमन्त्रित लगभग ५००० व्यक्तियोंको प्रसाद वितरण किया गया।

श्रील सनातन गोस्वामीका विरहोत्सव

श्रील गौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें गत २६ आषाढ़, १० जुलाईको पूर्णिमा के दिन श्रील सनातन गोस्वामीजी का तिरोभाव महोत्सव मनाया गया। विशेष कर व्रजमण्डलमें यह उत्सव बड़े समारोहके साथ प्रति वर्ष ही मनाया जाता है। इस दिन व्यासपूजा मनाने की रीति चली आ रही है। इसी दिन चातुर्मास्य प्रारम्भ करने की प्रथा है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उक्त दिवस श्रील सनातन गोस्वामीके अलौकिक जीवन तथा अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें विशद रूपसे आलोचना की गई। सभाके अन्तमें श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने बड़े ही ओजस्वी भाषामें वक्तृता प्रदान किया।

श्रीश्रीझूलनयात्रा महोत्सव

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें

अन्यान्य वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी गत १९ श्रावण, ४ अगस्त, रविवार, एकादशीसे लेकर २३ श्रावण, ८ अगस्त, बृहस्पतिबार, पूर्णिमा तक श्रीराधाविनोद बिहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। सभा-मण्डप, हिंडोला और

श्रीमन्दिर नाना प्रकारकी आलोक मालाओं, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों, कदली वृक्षों और आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित किये गये थे। नित्य नई-नई झाँकियाँ, विराट हरिसंकीर्त्तन, प्रवचन आदि महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे। समागत व्यक्तियोंके निकट हरिकथाका प्रचुर परिवेशन किया गया। इस वर्ष विशेषता यह थी कि ॐ विष्णुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके प्रिय एवं कृपापात्र त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराजकी उपस्थितिमें यह उत्सव सम्पन्न हुआ।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें

समितिके मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह महोत्सव विराट रूपमें सम्पन्न हुआ है। मठके नवनिर्मित नाट्य-प्रांगण तथा मन्दिरमें श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीके झूलोंकी सुन्दर-सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की गईं थीं। ये सभी झाँकियाँ विद्युतके द्वारा चालित होनेके कारण बड़े ही आकर्षक और मनोहर लगती थीं। प्रतिदिन शामको दर्शकोंकी अपार भीड़ झूलनकी झाँकियों का दर्शन करने आया करती। विभिन्न वक्तागण प्रतिदिन हरिकथा द्वारा श्रोताओंको आनन्दित करते थे।

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें

समितिके अन्यान्य मठोंमें झूलन महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया गया है। श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें श्री श्रील आचार्यदेवके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराजकी देखरेखमें यह उत्सव मनाया गया। इस उत्सवमें स्थानीय एवं निकटवर्त्ती स्थानोंके बहुतसे गण्यमान्य सज्जनोंने भाग लेकर समितिके सदस्यवर्गको आनन्दित और उत्साहित किया है। अन्तिम दिनके उत्सवमें सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत २२ श्रावण, ८ अगस्त रविवार पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि समिति के सभी शाखा एवं मूल मठमें उपवास, कीर्त्तन, भाषण और प्रवचनके द्वारा पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें विशेष धर्म सभाका आयोजन किया था, जिसमें श्रीबलदेव तत्त्वकी विशद रूपमें आलोचना की गई।

श्रीश्रीजन्माष्टमी व्रत और श्रीश्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत ३१ श्रावण, १६ अगस्त, शुक्रवारको समितिके सभी

मठोंमें श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रतोपवास और दूसरे दिन सोमवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें

यहाँ यह उत्सव श्री श्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिमें विराट समारोह तथा विशेष उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ है। इस उपलक्ष्यमें यहाँ श्रीकृष्णकी जन्मलीला प्रदर्शनीका बड़ा सुन्दर आयोजन किया गया था। यह प्रदर्शनी ३१ अगस्त, श्री श्रीराधाष्टमी तिथि तक खुली रही। प्रतिदिन हजारों दर्शक तथा श्रोतागण आया करते थे। प्रदर्शनीमें कृष्णकी विविध प्रकारकी मनोहर लीलाओंको सुन्दर ढङ्गसे प्रस्तुत किया गया। ये सभी लीलाएँ विद्युतशक्ति द्वारा परिचालित होती थीं। इस अवसर पर परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेव और विभिन्न त्रिदण्डिचरणों के भाषण और प्रवचन हुए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन सबेरे से १२ बजे रात तक श्रीमद्-भागवतके दशम स्कन्धका परायण हुआ। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर हजारों व्यक्तियों को महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीजन्माष्टमीका व्रतोपवास और नन्दोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। श्रीमन्दिर और नाट्य मन्दिरको आम्र पल्लव, कदली वृक्ष, रङ्ग-बिरङ्गे तोरण और वस्त्रों द्वारा आकर्षक रूपसे सजाया गया था। सबेरे से १२ रात तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका परायण तथा हरिकीर्त्तनादि हुए। श्रीपाद रासबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद कुञ्ज-बिहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद कृष्णस्वामी ब्रह्मचारी, श्रीपाद नृत्यकृष्ण ब्रह्मचारी आदिके उपदेश पूर्ण भाषण हुए। अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद नारायण महाराजने श्रीकृष्ण जन्म-प्रसङ्ग पाठ किया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर उपस्थित भक्तवृन्दोंको सुस्वादु-महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीराधाष्टमी-व्रतोत्सव

गत १५ भाद्र, ३१ अगस्त, शनिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीराधाष्टमीका महोत्सव कीर्त्तन, पाठ, भाषण और प्रवचनके माध्यमसे बड़े समारोह के साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा तथा श्रीदेवानन्द गौड़ीय पठ, नवद्वीपमें उक्त दिवस विशेष सभाका आयोजन किया गया था जिसमें विभिन्न वक्ताओंने श्रीराधा-तत्त्वके सम्बन्धमें शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया।

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव

गत २० भाद्र, ५ सितम्बर बृहस्पतिवारको समितिके सभी शाखा मठोंमें ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव हरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा तथा श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सबेरे तथा शामको श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों और पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया और उनकी अप्राकृत शिक्षाओं तथा अलौकिक जीवनी पर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई।

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज साथमें कुछ ब्रह्मचारियोंको लेकर बिहारके अन्तर्गत दूमका जिले तथा संथाल परगनामें प्रचार कर रहे हैं। वे जारमुण्डी आदि स्थानोंमें प्रचार कर धाधिका, कुमड़ाबाद आदि स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज साथमें श्रीकानाईदास ब्रह्मचारी, श्रीचिन्मयानन्द ब्रह्मचारी आदिको लेकर बंगालके अन्तर्गत राजमहल आदि स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज साथमें कुछ ब्रह्मचारियोंको लेकर बिहारके अन्तर्गत टाटानगर आदि स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज आसाम प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे प्रचार कर श्रीधाम नवद्वीप प्रत्यावर्त्तन किए हैं। उनके साथ श्रीभक्त्यांघ्रिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीश्यामगोपाल ब्रह्मचारी और श्रीदाम ब्रह्मचारी थे।

अन्यान्य प्रचारकगण विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

—प्रकाशक